स्मृति शिलालेख

विद्याभूषण भारद्वाज

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
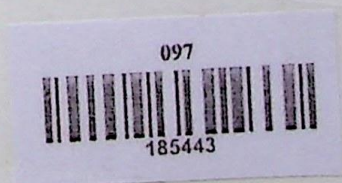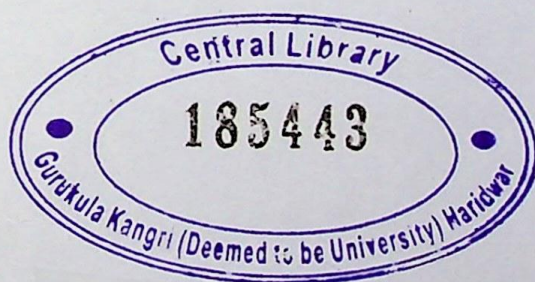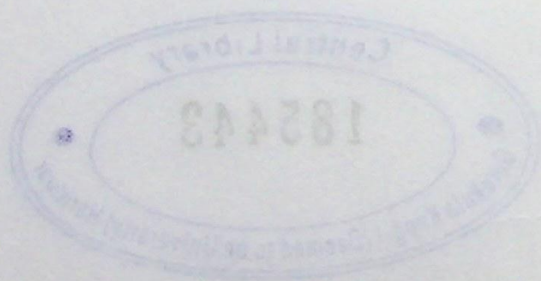
अपनी बात

मानव का मन मस्तिष्क एक पुस्तकालय के समान है जिसमें संपूर्ण जीवन की, सभी प्रकार की– अच्छी, बुरी, खट्टी, मीठी, चटपटी, कसैली, कड़ुवी आदि स्मृतियों की पुस्तकें-सी भरी होती हैं।" अपने जीवन की स्मृतियाँ– चाहे वह अध्यापक हो या परचूनिया, कलक्टर हो या गर्वनर, मन्दिर में घंटा बजाने वाला पंडित हो या मस्जिद में अज़ान देने वाला मुल्ला, मतलब कोई भी हो– गंगू तेली से लेकर राजा भोज तक– खट्टी, मीठी, चटपटी आदि स्मृतियाँ सभी के भीतर गुदी रहती हैं।

है ना आश्चर्य की बात कि इंसान पैदा होता है, धीरे-धीरे वह वृद्धावस्था को प्राप्त हो जाता है, उसके परिवेश का सब कुछ बुढ़ा जाता है, लेकिन उसकी स्मृतियाँ कभी बूढ़ी नहीं होतीं, वे सदा तरो-ताजा रहती हैं, इन्हें अजर कहा जा सकता है। मैं 85 वर्ष का हो गया हूँ, पर मेरे मानस पटल पर अंकित मेरा दो वर्ष का रूप, गर्मी में वस्त्र के नाम पर कमर पर लटकता तगड़ी का फुंदना, घर के बाहर चबूतरे पर खड़ा होकर मूत्र की धार मारना, फिर उसकी दूरी का आकलन करना, अगले दिन पिछले दिन की दूरी के रिकार्ड को तोड़ने की जोर लगाकर भरपूर चेष्टा, एक हाथ में गुड़ की डली, दूसरे से मूँह पर भिनकती मक्खियों को उड़ाते रहना, मकर संक्रांति के दिन, ब्रह्ममुहूर्त में पिताजी द्वारा मुझे रिजाई से बाहर खींचना, मेरे सारे कपड़े उतार मुझे कुएँ की मेंढ़ पर नंगा खड़ा कर देना, मेरे शरीर में उठती झुरझुरी को अनदेखा कर कुएँ से डोल भर भर कर मेरे ऊपर उड़ेलना आदि, मेरे मानस में आज भी ज्यूँ की त्यूँ अठखेलियाँ करती हैं।

इन स्मृतियों का मेरे जीवन में बड़ा योगदान रहा है, प्यारी-प्यारी मधुर स्मृतियाँ, एक मायने में मुझे माँ के समान लगती है, नींद न आने की दशा में वे मानो मुझे लोरी गाकर सुला रही हैं– "निन्नी रानी आजा, मुन्ने को सुला जा", "चंदा मामा दूर के, पुए पकाए बूर के" आदि, कभी-कभी महसूस करता हूँ जैसे दादी मुझे अपनी गोदी में लिटाकर सिर पर थपकी देती हुई कहानी सुना रही है– "एक था राजा, एक थी रानी. .... खतम कहानी, और दादी को पता ही नहीं चलता था कि मैं कब का सो गया था।

यकीन मानिए, मैंने आज तक नींद लाने वाली गोली नहीं खाई, नींद न आने की शिकायत जब होती है, तो मैं अपनी मधुर-मधुर स्मृतियों में खो जाता हूँ और नींद आ जाती है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'क्यूँ भूलूँ' के अंतर्गत मैंने ऐसी ही स्मृतियों का उल्लेख किया है। अतीत कभी वर्तमान से अलग नहीं रहा है, कहीं न कहीं किसी न किसी रूप में वह वर्तमान से गुजरकर भविष्यत् की ओर जाता है। बचपन की मेरी ये स्मृतियाँ 75, 80 वर्ष पूर्व के मेरे गाँव के चित्र प्रस्तुत करती हैं— गाँव का आर्थिक जीवन, खानपीन, आपसी भाईचारा, बाल मन की जिज्ञासाएँ, बच्चों के करतब, उनका भोलापन, गाँव की पाठशाला, एक अध्यापक और चार कक्षाओं के एक सौ से ऊपर बच्चे, सर्दियों में पाला पड़े तालाब के पानी में शौचोपरांत हस्त प्रक्षालन, महिलाओं की शौच-निवृत्ति का स्थान, अश्लील समझी जाने वाली भाषा का खुला प्रयोग, आर्य समाज का बढ़ता प्रभाव, स्वतन्त्रता आंदोलन की लपटें आदि, आज तक मुझे गुदगुदाती चली आ रही हैं।

आनुपातिक दृष्टि से देखा जाए तो, हिन्दी साहित्य में कहानी की तुलना में संस्मरण साहित्य बहुत कम है, जबकि व्यक्ति के एक-एक संस्मरण में अनेकानेक कहानियाँ, उपन्यास भरे पड़े हैं। मैं समझ नहीं पा रहा हूँ कि यह विधा इतनी उपेक्षित क्यों रही? मैंने इस ओर कदम बढ़ाया है और ईमानदारी से बचपन के संस्मरणों का चित्रांकन किया है। इस संस्मरण को लिखते समय मैं कहीं भी हीन भावना का शिकार नहीं हुआ, फटी हुई गंदी बनियान के ऊपर चमचमाती कमीज से उसे ढकने का ढोंग मैंने नहीं किया।

मुझे यकीन है कि इन्हें पढ़कर पाठकों को निराश नहीं होना पड़ेगा, उसे इनसे हास्य मिलेगा, व्यंग्य मिलेगा, कथा रस का आनंद मिलेगा, उसे अपने मन मस्तिष्क में एक आलोड़न महसूस होगा, गाँव की वीरांगना के भी दर्शन उसे होंगे और लीक से हटकर कुछ नया पढ़ने का संतोष उसे होगा, पढ़ोगे तो जानोगे।

अंत में धन्यवाद ज्ञापन— नमन प्रकाशन के श्री नितिन गर्ग का मैं सबसे पहले धन्यवाद देता हूँ, जिन्होंने इसका प्रकाशन किया, आदरणीय भाई प्रफेसर मनमोहन सहगल, श्री मधु सूदन आनंद धन्यवाद के पात्र हैं, जिनके प्रोत्साहन से यह पुस्तक तैयार हुई।

स्थान : गाज़ियाबाद **विद्याभूषण भारद्वाज**

मो. 9871761497

01.01.2013

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डॉ० राम स्वरूप आर्य, बिजनौर
की स्मृति में सादर भेंट–
हरप्यारी देवी, चन्द्रप्रकाश आर्य
संतोष कुमारी, रवि प्रकाश आर्य

अनुक्रम

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्यूँ भूलूँ?
डॉ॰ परमानंद शास्त्री उर्फ, प्रो॰ पी॰ आनंद
(एक संस्मरण)

परमानंद मेरा लँगोटिया यार नहीं था। जुलाई 1947 में, मेरठ कॉलेज की बी.ए. प्रथम वर्ष की कक्षा में, एक सहपाठी के रूप में, परमानंद से मेरा मिलन हुआ। हम दोनों की मुलाकातें शनैः-शनैः मित्रता की ओर बढ़ती रही। कुछ ही दिनों में हमारी मित्रता प्रगाढ़ हो गई और उसने अंतरंगता का रूप धारण कर लिया। दोनों की आपसी बातें, निश्छलता के साथ एक दूसरे से बँटती रही। एक दिन परमानंद ने मुझे बताया—

"मैं पिलखुवा के पास, हापुड़ से कोई छह-सात किलोमीटर पश्चिम में अनवरपुर गाँव का रहनेवाला हूँ। जब मैं छोटा सा ही था पिताजी ने कह दिया था कि जो कुछ बनना है, अपने बलबूते पर ही बनो, मैं तुम्हारी कोई सहायता नहीं कर पाऊँगा। मेरे सामने सफाचट मैदान था—ऊबड़-खाबड़, एक ऐसी धरती जो बंजर है, पथरीली है, सिंचाई के कोई साधन नहीं, हल जोतने के लिए कोई बैल नहीं, मानो मुझे धरती कह रही है कि बेटा उठा फावड़ा, रख अपने कंधे पर जुआ, बैल की आशा मत कर, अकेला ही हल चला, श्रम-स्वेद से मुझे सींच, बीज, जो तेरी मरजी हो डाल ले और फसल उगा—हिम्मते मरदा मददे खुदा। कोई मेरा निर्देशक नहीं था। मैंने मेरठ की राह पकड़ी और मेरठ के बिल्वेश्वर संस्कृत महाविद्यालय में पहुँच गया। वहीं से प्रथमा, मध्यमा, शास्त्री परीक्षाएँ, प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण कीं। साथ-साथ मैंने हाईस्कूल, इण्टर की परीक्षाएँ भी प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण कीं। मैंने सोचा कि शास्त्री-वास्त्री से काम चलने वाला नहीं, कुछ और किया जाए और मैंने मेरठ कॉलेज में बी.ए. प्रथम वर्ष में प्रवेश ले लिया।" परमानंद

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरठ सदर बाजार के एक सेठ के यहाँ रोज संध्या समय बहीखाता लिखने का कार्य करता था, उससे कुछ अर्थ-प्राप्ति हो जाती थी।

बी.ए. द्वितीय वर्ष का सत्रारंभ हुआ। जुलाई 1948 में, मैंने और परमानंद ने, बैठकर निर्णय लिया कि बी.ए. में प्रथम श्रेणी लाने के लिए, अच्छा हो, हम दोनों हॉस्टेल में रहें, वहाँ पढ़ाई अच्छी होगी और हम दोनों ने मेरठ कॉलेज छात्रावास में प्रवेश ले लिया। हम दोनों ने एक ही कमरा अलॉट करा लिया। उस समय कॉलेज-छात्रावास के सभी कमरे डबल सीटेड हुआ करते थे। तभी परमानंद ने बताया था कि मेरी शादी हो चुकी है, सुनकर मुझे एक अजीब या आश्चर्य हुआ कि इस नन्हें पखेरू के पर इतनी जल्दी कैंच कर दिए गए। उसके पिताजी उससे बहुत नाराज थे क्योंकि वे कहते थे कि मुझे मध्यस्थ ने लड़की के सौंदर्य के विषय में अंधकार में रखा। सारांश है कि परमानंद की पत्नी, अपने श्वसुर के सौंदर्य-पैमाने पर खरी नहीं उतरी और उन्होंने परमानंद को कुछ कठोर कदम उठाने का आदेश दिया, पर परमानंद ने उनके आदेश को आउटराइट रिजेक्ट कर दिया। मृत्युपर्यंत परमानंद के पिताश्री अपनी नाराजगी दूर नहीं कर सके।

बी.ए. का परीक्षा-परिणाम घोषित हुआ। परमानंद की फर्स्ट क्लास आई और मेरी सेकिंड। मैंने कहा, "यार, फिर मार ले गया फर्स्ट क्लास! बधाई तुझे।" उन दिनों फर्स्ट क्लास बड़ी मुश्किल से दिखाई पड़ती थी। आजकल तो सी.बी.एस.ई. की परीक्षा में सबसे अधिक फर्स्ट क्लास, फिर द्वितीय क्लास और तृतीय क्लास तो बहुत कम दिखाई पड़ती है। इस प्रकार के परीक्षा-परिणाम देखकर मुझे लगता है जैसे फर्स्ट क्लास दिमाग का नहीं, रटंत विद्या का खेल है, बस सही पर टिक मार्क लगाओ और झटक लो फर्स्ट क्लास।

मैं बड़े भाई साहब के साथ, सराय लालदास मुहल्ले की सेठों की गली में रहता था। परमानंद ने भी वहीं पास में ही किराए के एक मकान में अपनी पत्नी के साथ रहना शुरू कर दिया। मैंने और परमानंद ने मिलकर निर्णय लिया कि इलाहाबाद विश्वविद्यालय से हिन्दी में एम.ए. किया जाए। उन दिनों, भारत के दो विश्वविद्यालय ऐसे थे जहाँ से हिन्दी में एम.ए. करना बेहतर समझा जाता था—इलाहाबाद विश्वविद्यालय और बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी की धाक थी और हम दोनों ने जुलाई 1949 में

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इलाहाबाद विश्वविद्यालय में एम.ए. हिन्दी में प्रवेश ले लिया। दारागंज की एक धर्मशाला में, स्वर्गीय प्रभात शास्त्री की सहायता से हमें बिना किराए का एक कमरा मिल गया था।

श्री प्रभात शास्त्री से मेरी भेंट 1948 में, दिल्ली आर्य समाज के दीवान हाल में तब हुई थी जब वे डॉ. हरबंस लाल शर्मा के साथ उत्तमा (साहित्य रत्न) के परीक्षार्थियों का वायवा लेने आए थे और मैं एक परीक्षार्थी था। डॉ. हरबंस लाल शर्मा से मेरा परिचय पुराना था, वे मेरे बड़े भाई के मित्रों में से थे और मेरठ कॉलेज की ग्यारहवीं कक्षा में मेरे संस्कृत विषय के प्रोफेसर थे। तब मेरठ कॉलेज इण्टर-मीडिएट से लेकर एम.ए., एम-एस.सी. एम. कॉम आदि विषयों तक का अध्यापन केंद्र हुआ करता था। साहित्य सम्मेलन प्रयाग से कुछ पारिश्रमिक दिलाने की आशा, प्रभात शास्त्री ने हमें दिलाई थी जिसके बलबूते पर हम दोनों इलाहाबाद पहुँचे थे। लेकिन वह आर्थिक सहायता पर्याप्त नहीं थी। दो-तीन महीने तो जैसे-तैसे हमने गाड़ी खींच ली बड़े उत्साह के साथ हम विश्वविद्यालय जाया करते थे—डॉ. रामकुमार वर्मा, डॉ. धीरेन्द्र वर्मा, डॉ. माताप्रसाद गुप्त, डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, डॉ. रमाशंकर शुक्ल 'रसाल' प्रभृति विद्वानों के समक्ष छात्र रूप में बैठना एक अलग से आनंद का विषय था। एक पेपर "विशेष कवि" का हुआ करता था। डॉ. रामकुमार वर्मा विशेष कवि 'प्रसाद' पढ़ाया करते थे। वे बड़े सूटेड-बूटेड, पान, सिगरेट के शौकीन हुआ करते थे। लगभग सारी लड़कियों ने, डॉ. रामकुमार वर्मा की क्लास में पढ़ने की लालसा के वशीभूत, विशेष कवि प्रसाद पेपर ले लिया था, फलतः लड़के भी उधर ही खिंच गए थे। डॉ. रमाशंकर शुक्ल 'रसाल' विशेष कवि केशव पढ़ाया करते थे। मैंने और परमानंद ने केशव को अपनाया। डॉ. 'रसाल' की अध्यापन शैली अद्भुत थी, हमने महसूस किया जैसे हम ज्ञान के महासागर में गोते लगा रहे हों, लगा जैसे अभी तक तो हमने छोटी-मोटी नदियाँ, नहरें ही देखी थी, सागर नहीं, महासागर के दर्शन तो प्रथम वार कर रहे हैं।

विश्वविद्यालय के ऊपर की मंजिल पर एक छोटे से कमरे में, हमारी 'केशव' की क्लास लगती थी जिसमें मैं, परमानंद और दो-एक छात्र और कुल मिलाकर तीन-चार लड़कों की क्लास थी। 'रसाल' जी कुर्सी पर न बैठकर मेज पर पालथी मारकर बैठ जाते थे। वह पीरियड उनका और

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारा, अंतिम पीरियड हुआ करता था। लेक्चर शुरू करने से पूर्व वे सुरती फाँक कर, कहा करते थे कि देखो जब घंटा बज जाए तो बता देना। उनका लेक्चर शुरू होता था, वे धारा-प्रवाह बोलते रहते थे, 40, 40 मिनट के दो-तीन पीरियड समाप्त हो जाना डेली रुटीन सा हो गया था—वे बोलते रहते थे और हम छात्र मंत्रमुग्ध हो अचंभित से सुनते रहते थे। वे खुलेआम कहते थे—ये रामकुमार वर्मा कोई कवि हैं? कवि कोई हुआ है तो वह केशव है। एक दिन मैंने कहा, "डॉ. साहब और तुलसी?"

"अरे तुलसी, सूर कोई कवि थोड़े ना थे, वे तो भक्त थे, कवि तो हिन्दी साहित्य में कोई हुआ है तो वह केशव हैं, बाकी सब केशव के नीचे हैं। उनके लेक्चर के दौरान किसी भी छात्र की हिम्मत नहीं थी कि उनकी बात को काटे। मैं यह तो नहीं कहूँगा कि उनके सामने हिन्दी डिपार्टमेंट के प्राध्यापकों की घिग्घी बँध जाती थी, पर किसी की भी हिम्मत नहीं थी कि उनकी विद्वत्ता को चैलेंज कर सकें, उनके सामने टिक सकें। लेक्चर समाप्त करते हुए वे कहा करते थे—"अरे घंटा कब का समाप्त हो गया और तुम लोगों ने बताया तक नहीं, चोर हो ससुर।"

विश्वविद्यालय की जातीय राजनीति के कारण, 'रसाल' जी जैसा उद्‌भट विद्वान उपेक्षित ही रहा। उनका वैदुष्य-तेज इतना प्रखर था कि अपने को टन्नाशाह समझने वाला विद्वान् भी, नजरें झुकाकर उन्हें सलामी देता था—उनकी काली मैली सी अचकन के समक्ष सूटबूट सब हीन भाव से ग्रस्त थे। डॉ. हरिवंशराय बच्चन अँग्रेजी विभाग में प्राध्यापक थे, तब वे युवा ही थे और उनकी सुगंध से, विशेषतः नवयुवकों के हृदय, उन्मादित से रहते थे। चलते जाते उन्हें हाथ जोड़ कर प्रणाम कर लिया करते थे।

उन्हीं दिनों कुछ नवयुवक, हिन्दी प्रेमी, एक अजीब सी हवा के प्रभाव में फँसते नजर आते थे। नारी-दुर्दशा के प्रति उनके दिलों-दिमाग में एक नशीला सा, हल्का-फुल्का झँझावात जैसा कुछ चल पड़ा था—ये अबलाएँ, वेश्याएँ क्यूँ बनती हैं? किस कारण ये इतना पतित जीवन अपना लेती हैं? कैसी होती हैं ये? इनके अतीत को खँगाला जाए, उनके उद्धार की कुछ बात सोची जाएँ आदि-आदि प्रश्नों में, हम दोनों भी उलझे, हमने भी उनके अतीत में झाँकने की कोशिश की और हम दोनों ने निर्णय किया कि इनमें से कुछ लड़कियों के साक्षात्कार लिए जाएँ और मैं और

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमानंद एक उत्साह के साथ इलाहाबाद के रेड लाइट एरिया चौक के पास वाली गली में प्रविष्ट हुए। गली काफी लंबी थी। गली के दोनों ओर छोटी-छोटी सी कोठरियाँ बनी हुई थी—दरवाजों पर गंदे पर्दे लटके हुए थे। हर दरवाजे के बाहर छोटी-छोटी बालकनीनुमा जगह में, कुर्सी डाले रँगी-पुती, चमकीली-भड़कीली पोशाकों में लिपटी माटी की हँसती-बोलती पुतलियों की एक सब्जी मंडी सी लगी थी—बिल्कुल सब्जी मंडी जैसा शोरगुल भरा वातावरण, सड़ी हुई सब्जी से लेकर ताजा तरीन सब्जियाँ मानों बिक्री के लिए प्रस्तुत—अपनी हैसियत के हिसाब से मोलभाव कीजिए, पका कर खा जाइए और प्रातः शौच-निवृत्त होकर तरोताजा हो जाइए और उपर्युक्त कथनानुसार, रोज नई सब्जी खरीदकर उदरस्थ करने को आप स्वतंत्र—कुछ-कुछ ऐसे भाव मेरे मन में आए। आज तक वह दुर्गंध मेरा पीछा कर रही है। अपने नेत्रों के कैमरे से वीडियो रिकार्डिंग करते-करते हम दोनों ने उस गली के दो चक्कर लगाए। उन सभी ने, हम दोनों उभरते नौजवानों की ओर देखा, मानो हाथ जोड़कर नमस्कार करती हुई, कह रही हैं, आइए, पधारिये, अहोभाग्य हमारे कि आपकी चरणधूलि से हमारा आँगन महक उठा। हम दोनों ही स्वभाव से भीरु थे। हमारे कुछ कर गुजरने के गुब्बारे में एक पिन जैसी चुभन हुई और गुब्बारा फुस्स। सब अरमान धरे के धरे रह गए, हम दोनों में से किसी में भी वह संकल्पशक्ति नहीं थी जो हमारे नवोद्भूत उत्साह का संबल बन हमें अग्रसर होने को प्रोत्साहित ही नहीं, लाचार करती। फलतः हम लौटने लगे। हम गली से बाहर निकल ही रहे थे कि फंगस लगी फूलगोभी जैसी ने हमसे कहा, "कहो लाला, कोई पसंद नहीं आई?" परमानंद चुप। पर मैं बोल पड़ा, "नहीं?"

"तुम्हारे बाप ने भी की है, कभी रंडीबाजी?" उसने कहा। मैं बोला, "हमारे बाप के ऐसे भाग्य कहाँ जो इस सुख को भोग सके?" और हम वापस लौट आए। मुझे लगा जैसे उसने अपनी सारी बिरादरी को हम दोनों द्वारा अपमानित महसूस किया। हम दोनों ही वितृष्णा, जुगुप्सा जैसे भावों से भर उठे, एक उबकाई सी आने लगी, मानो बहुत कडुवी दवाई को उदरस्थ करना चाहता हूँ, पर वह भीतर से अस्वीकृत बाहर होकर फेंक दी जाने को तत्पर हो। खैर, उसका सही चित्रण तो सधा हुआ कलाकार ही कर सकता है, मेरी शक्ति से बाहर है उस घिनौनी अनुभूति का

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सांगोपांग विवेचन। आज तक उसकी स्मृति की प्रतिक्रिया–'हैत्थू' के रूप में होती चली आ रही है–बस। सारांश है कि नारी उत्थान योजना का गुब्बार, एक डकार के साथ बाहर निकल गया, पेट को आराम सा मिला और हम दोनों ही यथार्थ के धरातल पर लौट आए। दिल के अरमाँ दिल में ही रह गए।

मेरे सामने अर्थ-संकट का वह भयावह रूप नहीं था जैसा परमानंद के साथ था। प्रभात शास्त्री की सहायता से, प्रथमा, मध्यमा आदि परीक्षाओं की उत्तर पुस्तिकाओं के मूल्यांकन से जो कुछ भी अर्थ-प्राप्ति होती थी, वह पर्याप्त नहीं थी। फलतः परमानंद ने देवरिया जिले के एक इण्टर कॉलेज में अध्यापकी स्वीकार कर ली। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के सुपुत्र श्री गोकुलचंद्र शुक्ल वहाँ के प्रिंसिपल थे। मैं अकेला रह गया। मैं सदा ही इंद्रिय-दास रहा, मन को काबू न कर सका और मेरठ लौट जाने की तरकीब सोचने लगा। भगवान ने मेरी सुन ली और मैं बीमार हो गया। सोचा अच्छा बहाना मिल गया कि अब घर का कोई सदस्य मुझे ताने नहीं मार सकेगा कि पहले ही मना किया था कि इलाहाबाद मत जाओ। मुझे एक वाकया याद आ गया–गाँव का एक लड़का इलाहाबाद से अँग्रेजी में एम.ए. करने गया। वह दो साल बाद लौटा तो एक बुजुर्ग ने कहा, "लाल्ला कहाँ गया था, बड़े दिनाँ में दिखाई दिया?" "ताऊ, इलाहाबाद एम.ए. करण गया था।" "फिर के हुया?" "फेल हो गया।" इस पर ताऊ बोला, "अरै बावले, तेरा यू काम तो हम यही करा देत्ते, फिजूल में इतना पैसा और टैम बरबाद कर्‌या।" मुझे अपने किए पर अफसोस था, कुछ झल्लाहट भी थी कि पूरा एक साल बीमारी में निकल गया। एक साल बेकार हो गया।

परमानंद की कर्मठता उसे आगे धकेल रही थी, अर्थ-संकट उसकी टाँगे पीछे खींच रहा था। परमानंद था कि "जोर लगा के हइशा" आगे और आगे घिसटता रहा–न घुटने छिलने की परवाह, न पैर में किसी प्रकार की चुभन, उसने महसूस की। अर्थ-संकट टुकुर-टुकुर उसे देखता रह गया और परमानंद ने प्रायवेटली एम.ए. हिन्दी प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण कर लिया और मेरे मन में विचार आया कि कदाचित् अर्थ-संकट परमानंद के लिए वरदान सिद्ध हुआ। पर नहीं, वह तो एक योद्धा था–"सुख दुखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जुलाई 1950 में मैंने मेरठ कॉलेज में एम.ए. हिन्दी में प्रवेश ले लिया। परमानंद से मेरा पत्र-व्यवहार चलता रहा। डॉ. हरबंस लाल शर्मा मेरठ कॉलेज से खुर्जा के स्नातकोत्तर महाविद्यालय में हिन्दी विभाग के अध्यक्ष पद की कुर्सी पर जा विराजे थे। उन्होंने मुझे कहा था कि खुर्जा से एम.ए. कर लो, मैंने उनकी बात नहीं मानी। कुछ समय पश्चात् डॉ. शर्मा अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय में हिन्दी संस्कृत विभाग के अध्यक्ष पद पर नियुक्ति पाने में सफल हो गए थे। मैंने परमानंद को डॉ. शर्मा से मिलाया। वे गुण-ग्राहक थे, उन्होंने परमानंद का हाथ थाम लिया। परमानंद ए.एम.यू. में नियुक्त हो गया। मैं एम.ए. हिन्दी में प्रथम श्रेणी लाने में विफल रहा। डॉ. शर्मा ने मुझे एक बार फिर कहा, "अलीगढ़ चला आ, यहाँ से पी-एच.डी. और संस्कृत एम.ए. दोनों साथ-साथ कर ले। मैं उत्साहित हुआ और अलीगढ़ पहुँच गया।

चूँकि परमानंद अलीगढ़ में जम चुका था, अतः मेरे लिए अलीगढ़ में ठहरने और खाने-पीने जैसी कोई समस्या नहीं थी। मैं, अलीगढ़ में परमानंद के छोटे से परिवार का एक सदस्य बन गया। "हिन्दी साहित्य पर बौद्ध धर्म का प्रभाव" विषय पर शोध करने की रूपरेखा तैयार करने लगा। उन दिनों मैंने परमानंद और भाभी (परमानंद की पत्नी) के स्वभाव को बड़ी माइन्यूटली परखा। मुझे लगा जैसे मैं एक नए संयुक्त परिवार का सदस्य बन गया हूँ। भाभी का व्यवहार अद्‌भुत था, मुझे अपनापन दिखाई पड़ा—उनके चेहरे पर न कभी थकान, न किसी प्रकार की उपेक्षा, न कभी माथे पर शिकन—हरदम अपनत्व, ममता, स्नेह से परिपूर्ण। आज के संदर्भ में जब उसकी तुलना करता हूँ तो मुझे लगता है जैसे मैं अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन कर रहा हूँ। महानगरीय कल्चर में अपनत्व कुछ मिनटों अथवा घंटों तक ही सीमित रहता है यानी अपनत्व की दीर्घायु सिकुड़ते-सिकुड़ते अत्यल्प रह गई है। आजकल की पीढ़ी कदाचित् मेरी इस बात का यकीन न करे। उन्हें तो मम्मियों से प्रायः यह कहते सुना है, "पता नहीं कहाँ-कहाँ से आ टपकते हैं, अपने लिए तो हमसे चाय बनती नहीं, इनके लिए चाय बनाओ—ऊँह—उफ अब चैन पड़ी है, दो घंटे वेस्ट कर गया, जैसे इसे अपने घर में कोई काम ही नहीं।" आदि-आदि। खैर, परमानंद के साथ रहने से मैंने झूठा सच्चा एक निष्कर्ष निकाला कि रिश्ते-नाते वे सच्चे होते हैं जो मन से स्वीकार किए जाते हों, खून के

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रिश्तों का नम्बर, दोस्ती के रिश्ते के बाद आता है। अस्तु।

इस नए संयुक्त परिवार में मैं दो-तीन महीने रहा, और अपनी आदतों का गुलाम, मैं अलीगढ़ से उखड़ गया—एक बार फिर स्वयं को सांत्वना दी—मैं क्या करता, मेरी गाड़ी का स्टीयरिंग तो विधाता के हाथ में है, उसने जिधर मोड़ दिया, गाड़ी मुड़ गई, जैसे मेरा अपना स्वतंत्र कोई व्यक्तित्व नहीं। सारा दोष भाग्य के मत्थे मढ़कर मैं मेरठ लौट गया। भटकन फिर शुरू हो गई।

परमानंद की गाड़ी को स्थिरता मिल चुकी थी। इसी बीच परमानंद ने प्रथम श्रेणी में संस्कृत में एम.ए. और पी-एच.डी. कर ली और लेखन-कार्य आरंभ कर दिया। अभी तक का लेखन, कुछ छुट-पुट कविताओं और लेखों तक ही सीमित रहा। उसने विधिवत् लेखन-कार्य शुरू कर दिया। बिहारी पर एक पुस्तक लिखी, वह उ.प्र. सरकार से पुरस्कृत हुई—लेकिन यहाँ परमानंद का एक दुर्भाग्य रहा कि नाम और पुरस्कार दोनों में से एक भी नहीं मिला कोई और हड़प ले गया। हिन्दी जगत् में यह कोई अनोखी घटना नहीं थी। इसी संदर्भ में परमानंद ने मुझे बस इतना ही कहा कि "न खुदा ही मिला, न विसाले सनम।" मैंने कहा, "यार महसूस क्यों करता है, तुझे क्या फर्क पड़ता है, तू तो विषपायी है, एक प्याला और सही।" "गाथा सप्तशती—रीतिकालीन कवियों के संदर्भ में" एक बड़ा-सा ग्रंथ लिखा, मैंने ही उसे प्रकाशित किया था, जिसने भी उस ग्रंथ को देखा और पढ़ा, उसी ने परमानंद की सधे हुए आलोचक, संस्कृत, पालि, प्राकृत भाषाओं के विद्वान् के रूप में, सराहना की। ग़ालिब के दीवान का पद्यबद्ध अनुवाद किया। इससे पता चलता है कि परमानंद की उर्दू पर पकड़ कितनी जबरदस्त थी। परमानंद से मैंने कई बार कहा कि इसे कहीं से प्रकाशित करा दूँ? पर परमानंद तो जैसे बतर्ज एक शायर 'कौन जाए यार अलीगढ़ की गलियाँ छोड़ के।' चूँकि मैं प्रकाशन-कार्य छोड़ चुका था, 'दीवाने गालिब' का अनुवाद यहीं छोड़कर वह चला गया। वह निस्पृह था उसने चुनौतियों से कभी हार नहीं मानी, उसके किसी भी प्रकार के कष्ट की कराह जब मैंने ही नहीं सुनी तो जमाने ने तो क्या सुनी होगी? उसे कभी निराश नहीं देखा, न ही कभी उसने किसी की चाटुकारिता की, न कभी किसी बैसाखी का सहारा लिया, न किसी से प्रशंसा चाही, न ही उसने किसी को उपदेश दिया, समझाया जरूर।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हम दोनों जब इलाहाबाद विश्वविद्यालय के छात्र बने थे, तब विश्वविद्यालय छात्र संघ ने एक 'कहानी-प्रतियोगिता' का आयोजन किया था। मेरी कहानी को द्वितीय पुरस्कार मिला था, परमानंद बहुत प्रसन्न हुआ, बोला, "तू खाली पड़ा रहता है, पिक्चर देख-देखकर टाइम वेस्ट करता है, लिखाई में क्यों नहीं खर्च करता उसे, लिखा कर।" बस इतना ही कहा था। पिक्चरें देखने का स्वभाव परमानंद का नहीं था। मुझे याद हैं, एक बार मैं अलीगढ़ गया—वहाँ बच्चों ने मुझसे कहा, "चाचाजी, हमें पिक्चर दिखा लाइए, पिताजी तो कभी दिखाते नहीं।" परमानंद ने कहा, "बेटा रे, तुम लोगों को पिक्चरें दिखाता रहता तो ये कोठी नहीं बनती जिसमें तुम रह रहे हो। परमानंद ने मैरिस रोड पर एक हजार गज जमीन में कोठी बनवाई थी, जिस कोठी का नामकरण संस्कार मैंने ही किया था—सिद्धार्थ सदन। सिद्धार्थ, परमानंद के चार बच्चों में सबसे छोटा है तीन पुत्रियाँ और एक पुत्र। जब परमानंद एक पुत्र का पिता बना तो मैंने ही उसका नाम सिद्धार्थ रखा था। परमानंद ने मेरे दिए नाम को सहर्ष ग्रहण किया, पर पिता की ओर से भी तो बेटे को कुछ मिलना चाहिए, उसने उसके आगे "निरुपम" जोड़ दिया और पुत्र का नाम 'सिद्धार्थ निरुपम' रख दिया। सिद्धार्थ अपने पिता की भाँति मेधावी है। जब वह छोटा सा था तो एक ट्रक को देखकर उसने कहा था, "देखो पिताजी 'फटी हुई मोटर'।" सिद्धार्थ जीनियस है, वह भी सदा फर्स्ट क्लास ही रहा। लखनऊ मैडिकल कॉलेज से डिग्री हासिल की और आज यूनिसेफ में उच्च पदस्थ अधिकारी है, बड़ी लड़की वनस्थली विद्यापीठ में है, मँझली ने जे.एन.यू. से एम.ए. हिन्दी किया और एक कॉलेज में प्रवक्ता बन गई थी, एक प्रख्यात चर्चित नवकवि से उसका विवाह हुआ। सबसे छोटी पुत्री का अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व है, पत्र-पत्रिकाओं, टी.वी. के माध्यम से आपसी रिश्तों की जो तस्वीर उसके मानसपटल पर बनी, उससे वह इतनी मर्माहत हुई कि उसने किसी बंधन में पड़ना स्वीकार नहीं किया और स्वतंत्र जीवन व्यतीत करने का संकल्प कर लिया, किंतु वह अकाल काल कवलित हो गई।

परमानंद की गृहस्थी की गाड़ी का स्टीयरिंग भाभी (परमानंद की पत्नी) के हाथ में था। परिवार की सामूहिक इच्छा को ममत्व के साथ स्वीकारती हुई, वे इस गाड़ी को जिस सावधानी के साथ, चारों ओर के

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रदूषित वातावरण की तंग गलियों से निकालती हुई उसके गंतव्य तक ले गई, वह स्तुत्य है, उस कथा को कुछ पन्नों में समेटना मेरे वश में नहीं। संक्षेप में फिलहाल इतना ही कह सकता हूँ कि वे एक ऐसी सुगृहणी थी जिसके भीतर चौका-चूल्हा सँभालने के साथ अपने भीतर बैठी एक कवयित्री की साज-सज्जा करते रहने की क्षमता थी। जीवन के अंतिम पन के निकट पहुँच जाने के बाद मुझे उनके कवयित्री-रूप के दर्शन हुए। मैं आश्चर्य चकित रह गया जब मैंने कविता-संकलनों की उनकी कुछ प्रकाशित पुस्तकें देखी—मन में प्रश्न उठा कि किस प्रकार वे अपने भीतर की कवयित्री को गुप्त रख सकी, क्यों रख सकी? वे कांता 'नलिनी' नाम से लिखती थी। खैर,

लगभग छह फुटे कृशकाय साँवले रंग के परमानंद के मुख पर मैंने कभी निराशा के भाव नहीं देखे, किसी के सामने गिड़गिड़ाना उसका स्वभाव न था। किसी पर नाराज होना उसका हक था। ए.एम.यू. में रीडर पद पर एक नियुक्ति होनी थी, परमानंद उस पद का एक योग्य उम्मीदवार था, नियुक्ति विभागाध्यक्ष डॉ. हरबंस लाल शर्मा के हाथ में थी। किसी बात पर परमानंद, शर्माजी से नाराज हो गया था। मैंने कहा, "मैं तुझे रीडर देखना चाहता हूँ, शर्मा जी से मिल ले।" परमानंद टस से मस नहीं हुआ, बोला, "कोई बात नहीं, रीडरशिप न मिली तो, मैं लेक्चरर बनकर रहने में ही प्रसन्न रहूँगा।" मेरे लाख कहने पर भी परमानंद रीडरशिप की भीख माँगने डॉ. शर्मा के पास नहीं गया। डॉ. शर्मा ने यह कहते हुए परमानंद की नियुक्ति कर दी—"आखिर परमानंद मेरा ही लगाया हुआ पौधा है, इसे सींचना मेरा धर्म है।" इससे पूर्व हिन्दी-संस्कृत दोनों विषयों का एक ही विभाग हुआ करता था। बाद में संस्कृत विभाग अलग होकर एक स्वतंत्र विभाग बन गया था। परमानंद संस्कृत विभाग में रीडर बन गया और वहीं से प्रोफेसर विभागाध्यक्ष पद से रिटायर हुआ।

तब भारत के विश्वविद्यालयों में, डॉ. हरबंस लाल शर्मा, डॉ. नगेंद्र और डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी की तिकड़ी मशहूर थी—भारत भर के विश्वविद्यालयों में हिन्दी विभागाध्यक्ष के पदों पर नियुक्ति का अधिकार प्रायः इस तिकड़ी की ही कलम को मिला हुआ था। परमानंद की गणना ऐसी किसी तिकड़ी, चौकड़ी में नहीं हुई। बताया ना कि परमानंद इस प्रकार की राजनीति से दूर, बहुत दूर था। वह, वह करता था जो उसे

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उचित लगता था।

एक बार की बात है—परमानंद को जम्मू-कश्मीर विश्वविद्यालय के बी.ए. पाठ्यक्रम में निर्धारण हेतु, आधुनिक हिन्दी काव्य-संकलन तैयार करने का ऑफर मिला। परमानंद ने उसे तैयार किया। मैंने देखा कि आधुनिक कवियों में राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त का नाम नदारद था, उन्हें कोई स्थान नहीं दिया गया था। मैं बोला, "अरे, तूने गुप्तजी को सम्मिलित नहीं किया?" "नहीं।" वह बोला।

"पर क्यूँ?" इस पर उसने उत्तर दिया—"मैंने उन्हें पत्र लिखकर उनकी कुछ कविताओं की स्वीकृति चाही थी। उन्होंने बिना पैसे लिए, स्वीकृति देने से इंकार कर दिया। मैंने उनकी कविताओं के पैसे नहीं दिए, उन्होंने स्वीकृति न दी—क्योंकि मेरे मन ने कहा कि अरे राष्ट्रकवि मैथिलीशरण, मैथैलीशरण हो गए—उनकी थैली हेतु मेरे पास कोई पैसे नहीं थे, मैंने नहीं रखा, आम छात्र तक पहुँचने के लिए जो कवि पैसे माँगे, उसे मैंने स्थान नहीं दिया, मुझे उनके व्यक्तित्व में एक कवि से अधिक एक व्यापारी का कब्जा देखा—तो मैंने गुप्त जी का सादर बहिष्कार कर दिया।" ऐसा था परमानंद जिसकी इस गुप्त बात को कदाचित् कोई नहीं जानता और मैं सोच नहीं पा रहा हूँ कि मेरा इस गुप्त रहस्य को प्रकट करना कहाँ तक उचित है। अब तो दोनों दिवंगत आत्माओं से क्षमा ही माँग सकता हूँ।

परमानंद कविता भी लिखा करता था। परमानंद का उपनाम 'मधुप' था। मेरा सारा पत्र-व्यवहार "प्रिय मधुप" से शुरू हुआ करता था। गाँधी जी की जलती चिता देखकर उसने एक कविता लिखी थी, जिसकी पहली पंक्ति मुझे आज भी याद है। "चिता जलती जा रही थी और अनगिन मानसों में तिमिर-लहरी छा रही थी"—प्रसाद जी की 'आँसू' उसे बहुत प्रिय थी। वह अक्सर गुनगुनाया करता था—"क्यूँ हाहाकार हृदय में एक विकल रागनी बजती।"

एक बार परमानंद ने मुझे लिखा, तेरे साथी, आचार्य जी की एक पुस्तक की संस्तुति मैंने पुरस्कार हेतु कर दी है। यह मत समझना कि मेरे भीतर बैठे विद्याभूषण की मैंने कोई सिफारिश मान ली है, पुरस्कार हेतु प्राप्त पुस्तकों में से वह डिज़र्व करती थी—इसलिए कर दी है।" मुझे तो पता भी नहीं था कि मेरे साथी आचार्य मिश्र ने अपनी कोई पुस्तक इस

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

योजना में भेजी है।

परमानंद आयु में मुझसे एकाध साल बड़ा था। एक प्रकार से परमानंद मेरा गुरु भी था—बी.ए. तक मैं, 'उपरोक्त', 'गत्यावरोध' 'गदगद्' आदि लिखा करता था। परमानंद ने बताया—यह अशुद्ध है—उपर्युक्त, गत्यवरोध, गद्गद सही है। तभी से वर्तनी-शुद्धि, वाक्य-गठन आदि का मुझे चस्का सा लग गया, जो आज तक लगा हुआ है।

परमानंद 'कर्मण्येवाधिकारस्ते' में यकीन करता था, वह कर्मरत रहा। उसने कभी नहीं चाहा कि कोई उसकी प्रशंसा करे। ब्राह्मण कुलोत्पन्न संस्कृज्ञ परमानंद ने कभी यज्ञोपवीत धारण नहीं किया, कभी पूजा-पाठ में संलग्न मैंने उसे नहीं देखा, मैं अनुमान नहीं लगा सका कि परमानंद आस्तिक था, या नास्तिक। जहाँ तक मैं समझा हूँ, परमानंद आस्तिक था, पर कर्मकांडी नहीं था। परम्पराओं, रीति-रिवाजों का वह पक्षपाती नहीं था किंतु उनका मुखर तिरस्कार भी नहीं करता था, वह प्रगतिशील था, पर पान-बीड़ी, सिगरेट, शराब, जानबूझ कर प्रदर्शनार्थ परम्पराओं, रीति-रिवाजों का अपमान करने की सीमा तक, प्रगतिशील नहीं था—गुटबाजी, अखाड़ेबाजी से वह दूर, बहुत दूर, एक एकांतवासी योगी था परमानंद। कहाँ तक उसके व्यक्तित्व का बखान करूँ? राजनीति भवानी के घर में झाड़-पोंछा लगाता तो परमानंद के गले में भी किसी 'श्री' आदि की माला पड़ गई होती, अखबार में उसके फोटो छप गए होते, पर नहीं—ये सब उसके लिए हेय थे। बस अब विराम देता हूँ।

समाचारपत्रीय भाषा के अनुरूप चलते-चलते, अपने मन की एक गिल्ट, एक अपराधबोध का उल्लेख करता हूँ। मेरा विवेक मुझसे कहता है, ऐसे महान् अनुकरणीय स्तुत्य व्यक्तित्व के लिए 'तू' का प्रयोग कर रहा है, कहीं यह तेरा अहं तो नहीं। तो मेरा उत्तर है कि तुलना तो बराबर वालों में होती है—मैं तो परमानंद के पासिंग भी नहीं, उससे तुलना कैसी? रह गई तू, तड़ाक से बात करने की बात, तो यहाँ इतना ही कह सकता हूँ कि मेरा जन्म, मेरा लालन-पालन जिस लोक-संस्कृति में हुआ है, उसमें बापू, ताऊ, दादा सभी बड़ों को 'तू' से संबोधित करते हैं, कदाचित् वही संस्कार हावी रहे हों मेरे ऊपर। फिर हम भगवान को भी तो 'तू' कहते हैं, कभी आप नहीं कहते? मेरे यहाँ की संस्कृति में बड़ों को उचित स्थान दिया जाता है—कोई भी कार्य घर के बड़े-बूढ़े की सहमति के बिना नहीं

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया जाता, चारपाई पर बैठे हुए किसी बुजुर्ग के सिरहाने की ओर कोई, कभी नहीं बैठता। अस्तु,

'तू' में अपनत्व है—मुझे लगता है कि परमानंद को 'आप' 'तुम' सम्बोधन देने से मेरे और उसके सामीप्य में एक दूरी आ जाती जो मुझे मंजूर नहीं।

परमानंद दिवंगत हो चुका है—मेरे मानस पटल पर उसकी शवयात्रा की तस्वीर सी उभर रही है। सभी बड़े-बूढ़े, स्त्री-पुरुष, बच्चे परमानंद के चरण स्पर्श कर रहे हैं, मेरा नम्बर आता है—मैं परमानंद, तेरे चरण स्पर्श करता हूँ, तू महान् है, काश मैं कुछ सीख पाता तुझसे, मेरी श्रद्धांजलि तुझे समर्पित है, पहले की तरह मेरे यहाँ आते रहना। हाँ, परमानंद, 1949 में तूने इलाहाबाद में मुझे एक आदेश दिया था, "तू कुछ लिखता क्यों नहीं?" उस आदेश का पालन करने के लिए मैंने अब कलम उठा ली है, भले ही अस्सी पार कर गया हूँ, भले ही यमराज के यहाँ से नॉनवेलेबुल वारंट कटने वाले हों—मैं लिखूँगा और वारंट आने तक लिखूँगा, यह मेरा तुझसे वायदा है—अब वायदा खिलाफी नहीं होगी। परमानंद को कैसे भूलूँ और क्यूँ भूलूँ? अब बस प्रणाम्।

●

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्यूँ भूलूँ

(रात भर नींद नहीं आती)

"लगभग 85 वर्ष की आयु का आँकड़ा छूने जा रहा हूँ, पर मैंने अभी तक नींद बुलाने के लिए एंक्ज़िट, रेस्टिल जैसी किसी गोली का सहारा नहीं लिया।" मैंने एक हमउम्र साथी से कहा।

वह बोला, "पर यार मैं तो करवटों पर करवटें बदलता रहता हूँ, हारकर जब नींद नहीं आती तो रेस्टिल लेनी पड़ती है, तू क्या वाकई नींद की गोलियाँ नहीं लेता?"

"इसमें वाकई की कौन-सी बात है? क्या मैं किसी जज के सामने अपना बयान दर्ज करा रहा हूँ जो गीता पर हाथ रखकर सच बोलने की कसम उठाकर, झूठ बोलूँगा?"

"फिर तो तू यार बड़ा भाग्यशाली है, जो इस उमर में भी बिना नींद की गोली लिए सो जाता है, क्या कुछ योगा वोगा करता है?"

"नो, नेवर, साफ बात है दोस्त, योगा वोगा मैं नहीं करता।"

"फिर इस उमर में तुझे कैसे नींद आ जाती है और वह भी अच्छी? कहते हैं बुढ़ापे में नींद नहीं आती।"

इस पर मैंने कहा, "आप बूढ़े हैं?"

"हाँ, 80 पार कर गया हूँ, बूढ़ा ही नहीं होऊँगा?"

"तो होते रहिए बूढ़ा, पर मुझे तो बूढ़ा होने के लिए मत कहिए, प्लीज अभी तो सेंचुरी लगाने में 15, 16 वर्ष बाकी हैं, अभी से बूढ़ा कह रहे हैं मुझे?" मैंने थोड़ी मुस्कराती झुँझलाहट से कहा।

उसने व्यंग्य कसा, "अच्छा, तभी नौ दिन में अढ़ाई कोस चलता है।"

"देख यार, शरीर तो मेरे बस में नहीं, माना कि वह अब हठधर्मी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करता है। जरूरत से ज्यादा बोझ खींचने वाला मरियल-सा घोड़ा जिस तरह जोर का चाबुक लगने पर अगले घुटनों को मोड़ते हुए, पिछले पैरों से जैसे आगे को खिसकता है, वैसे ही मैं कुछ काम कर पाता हूँ, हाँ लेकिन मन तो मेरे बस में है, मन से आज भी मैं स्वयं को बच्चा या नौजवान ही समझता हूँ, व्यवहार भी वैसा ही करता हूँ—बच्चों के साथ बच्चा, युवकों के साथ युवक। लेकिन बूढ़ों के साथ, बूढ़ों वाला व्यवहार नहीं करता। कभी कोई कह देता है, "दाँत फाड़कर हँसते शर्म नहीं आती?" तो उत्तर देता हूँ कि भैये दाँत तो मैं कभी के फड़वा चुका हूँ, वे मुँह में हैं ही कहाँ? फिर दाँत फाड़कर आप हँसते होंगे, मुझे तो, जब मुँह में दाँत थे तब भी हँसने के लिए दाँत फाड़ने की जरूरत नहीं पड़ी, तो अब जब दाँत हैं ही नहीं, तो उनकी जरूरत का सवाल ही नहीं उठता ...अगर कुछ फाड़कर ही हँसा जाता है तो मैं गला फाड़कर हूँ, हा, हा, हा, अट्टहास करता हूँ।"

मित्र ने कहा, "तो रात को सोते वक्त हा, हा करता है और नींद आ जाती है?" "बस यूँ समझ ले यार, यह मेरा स्वभाव है, पढ़े-लिखो की बोली बोलूँ तो, "यह मेरी नेचर है, खुशवंत सिंह जैसी, खुशवंत सिंह का नाम तो सुना होगा, बस एक छक्का लगने भर की देर है, देखना किस शान से मनाई जाएगी उनकी जन्मशती, किस शान से जलेगी उनके जीवन की 100वीं मोमबत्ती! सरदार जी ने दो शब्दों में ही 'सरदार-महाकाव्य' रच डाला।" वे बोले, "मतलब?"

"अज्ञेय की वह प्रसिद्ध कविता सुनी है ना,...अरे वही, चिड़िया उड़ गई, टहनी हिलकर शांत हो गई, जैसी कुछ-कुछ। खुशवंत ने इतने ही शब्दों में एक महाकाव्य रच डाला है—"सरदार जी, सरदारजी, आग लग गई है।"

"मैनू किं?"

"तुव्हाड्डे घर विच्च।"

"ओए तैन्नू किं?"

"बस बंधु, 'मैनू कीं?' और 'तैन्नू कीं?' यही है मेरा जीवन दर्शन—सार सार को ग्रहण कर थोथा उड़ा देता हूँ और घोंड़े बेचकर सोता हूँ, हाँ, वे ताने मारती रहती हैं, 'कैसा निष्फिकरा आदमी है, मैं करवटों पर करवटें बदलती रहती हूँ और ये हैं, खुर्राटे मारते रहते हैं, सोने भी नहीं

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देते।' सारांश हैं मैं व्यर्थ में टसुए नहीं बहाता, कूड़े में से भी कुछ अच्छी चीज की तलाश, समझ लो यह मेरी आदत है।''

''मैं समझा नहीं।'' वह बोला।

''इसमें ना समझने जैसी क्या बात है? नींद न आने की शिकायत, कभी-कभी मुझे भी होती है, मैं झट स्मृति-पुस्तकालय पहुँच जाता हूँ और कोई भी स्मृति-पुस्तक उठा उसके पन्ने पलटने लगता हूँ।'' उसने मेरी ओर फिर से प्रश्नसूचक दृष्टि फेंकी।

मैंने समझाया—''मानव, मन-मस्तिष्क एक पुस्तकालय के समान है जिसमें संपूर्ण जीवन की सभी प्रकार की—अच्छी, बुरी, खट्टी, मीठी, चटपटी, कड़वी, कसैली आदि स्मृतियों की पुस्तकें-सी भरी होती हैं। जब भी नींद न आने की शिकायत होती है, मैं झट से कोई एक अच्छी-सी स्मृति-पुस्तक लेटे-लेटे आँखें बंद कर पढ़ने बैठ जाता हूँ और मुझे झट नींद आ जाती है। प्यारी-प्यारी मधुर स्मृतियाँ, मुझे एक मायने में माँ के समान लगती हैं, नींद न आने की दशा में वे मानो मुझे लोरी सुना रही हैं, ''निन्नी रानी आजा, मुन्ने को सुला जा'', ''चंदा मामा दूर के, बुए पकाए बूर के'' आदि-आदि। कभी महसूस करता हूँ जैसे दादी मुझे अपनी गोदी में लिटाकर, हल्के-हल्के सिर पर थपकी देती हुई कहानी सुना रही है—एक था राजा...एक थी रानी...खतम कहानी—और दादी को पता ही नहीं चलता मैं कब का सो गया।

वह तपाक से बोला, ''अरे यार, इन स्मृतियों के कारण ही तो मुझे नींद नहीं आती, वे ही तो मेरी नींद हराम करती हैं।''

''फिर तुम ऐसी पुस्तक पढ़ते ही क्यों हो जो नींद उड़ा दे, ऐसी भी तो स्मृतियाँ होती हैं जो गुदगुदाती हैं, चेहरे पर फूल खिला देती हैं, हँसा देती हैं, ऐसी ही पढ़ाकर ना—क्रोध दिलाने वाली, हृदय को निचोड़कर रख देने वाली, दिमाग में तूफान मचा देने वाली, दाँत किटकिटा देने वाली स्मृतियों की पोथी बाँचने को किसने कहा था। जिसे बावले कुत्ते ने काटा हो, वही ऐसी स्मृतियों को इनवाइट करता है—ऐसा मेरा मानना है।

मुझे लगा जैसे वह मेरी बात पर गंभीरतापूर्वक विचार कर रहा है। उसे मौन देखकर मैंने आगे कहा, ''देखो भई, बुरा न मानना, मैं समझता हूँ, तुम्हारा टेस्ट ही गड़बड़ है या तुम्हारी अपनी जबान काबू में नहीं रहती, तुम उन लोगों में से हो जो जानते हुए अखाद्य का सेवन किए जाता है

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और फिर शिकायत करता है पेट खराब होने की, इसलिए बंधु कटु स्मृतियों को प्रवेश ही मत दिया करो। फिर देखो कि नींद आती है कि नहीं, और यदि फिर भी नींद नहीं आती तो डॉक्टर को दिखाओ।

अपने-अपने जीवन की स्मृतियाँ—चाहे वह अध्यापक हो या परचूनिया, कलक्टर हो या गवर्नर, मंदिर का घंटा बजाने वाला पंडित हो या मस्जिद में अजान देने वाला मुल्ला, मतलब कोई भी हो—गंगू तेली से लेकर राजा भोज तक—खट्टी-मीठी, कड़वी, चटपटी आदि स्मृतियाँ सभी के भीतर संचित रहती हैं। मैं नहीं मानता कि प्रकृति ने किसी को स्मृति-कोष देकर उसकी चाबी उसे न थमा दी हो और यह न कहा हो कि ले बेटा, यदा-कदा इनका सदुपयोग करते रहना, अब प्रकृति तुम्हें खुद आकर घुट्टी पिलाए, यह तो हो नहीं सकता। यह तो आप पर ही निर्भर करता है कि आपकी रुचि किस प्रकार की स्मृतियाँ खँगालने की है। मैं तो भई अपनी जानता हूँ कि जब भी मुझे नींद बुलानी होती है, मैं झट, अपनी हजारों स्मृतियों में से कुछ मीठी-मीठी स्मृतियाँ निकालकर उनका परायण करना शुरू कर देता हूँ और पताही नहीं चलता कि कब नींद आ गई।

मैं मानता हूँ कि मेरे लिए, नींद लाने का इससे बढ़िया नुस्खा और कोई नहीं। कदाचित् स्मृतियाँ इसीलिए नहीं मरतीं कि सुदूर अतीत तक की होते हुए भी, वे वर्तमान और भविष्य से, कहीं-न-कहीं चिपकी होती है। एक रात मुझे नींद नहीं आ रही थी, तो स्मृतियों के जंगल में घूमने की बजाए, मैंने हिंदुस्तान टाइम्स का मैट्रिमोनिवल पढ़ना शुरू कर दिया। सुनकर आप कह सकते हैं, "इस उमर में मैट्रिमोनियल? क्या कोई बेटा, बेटी ब्याहनी है?" तो मेरा उत्तर है नहीं, पर मुझे शौक है, जैसे ही मैंने पढ़ना शुरू किया, मैं अपने घुर अतीत में पहुँच गया। मेरे गाँव में मेरे बचपन का पड़ौस—पति, पत्नी का वार्तालाप—

"देख किसनू के बाप्पू, खजान नाई छोरी देक्खण गया है, देक्खो, कैसी खबर लात्ता है?"

"किसनू की माँ, सुण्या है खानदान तो चोक्खा है, छह बळदाँ की खेत्ती है, छह वळदाँ की।" उसने मुस्कराते हुए कहा, "तब किसान की आर्थिक दशा का पैमाना हुआ करता था कि खेती में उसके यहाँ कितने बैलों का प्रयोग होता है।"

"फेर खजान नाई नै क्यूँ भेज्या?"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"अरी छोरी भी देखणी है के नईं?"

उन दिनों लड़का देखने का काम प्रायः नाई को सौंपा जाता था। इसके पीछे कदाचित् 'आदमियों में नव्वा, पक्षियों में कउआ' और यह 'नराणां नापितो धूर्तः पक्षिणां काकैव च' का अनुवाद है। चालाकी धूर्तता का एक अनिवार्य तत्व है। कदाचित् नाई को इस विषय में सबसे कुशल इसलिए समझा गया हो कि वह एक नजर में ही बाल की खाल निकाल लाता है, कदाचित् नाई की इसीलिए बड़ी खातिर की जाती थी कि उसकी रिपोर्ट पर ही रिश्ते की हाँ, ना निर्भर करती थी। लेकिन शनैः-शनैः नाई की विश्वसनीयता में कमी आती गई।

फिर समाज में विकास के लक्षण दिखाई पड़ने लगे, लड़के लड़की पसंद करने के तरीके में प्रगति हुई, घर का कोई बड़ा-बूढ़ा लड़की देखने जाने लगा। हम पाँच भाई थे, मैं सबसे छोटा था। मेरी स्मृति में मेरे सबसे बड़े भाई उभर आए जब वे, मेरे से बड़े भाई के लिए लड़की पसंद करने गए थे। वहाँ उनकी बड़ी खातिर हुई—लड़की चूल्हे की ओर मुँह और भाई साहब की ओर से पीठ किए पूरियाँ बना रही थी जिससे लड़की के पाकशास्त्र में प्रवीणा होने का ठप्पा समझा जाना चाहिए, सिर साड़ी से ढका हुआ था, हाँ ब्लाउज पहने हुए लड़की के हाथ कोहनी तक दिखाई पड़ रहे थे, भाई साहब ने सोचा कि लड़की स्वस्थ, हृष्ट पुष्ट और गौर वर्णा है, थाली में कई सब्जियाँ, खीर, रायता और कुछ मिठाइयाँ आदि भरी पड़ी थीं, लड़की के पिता जी ने बताया था कि यह सब कुछ बिटिया ने ही बनाया है, यह सुख-सागर पढ़ लेती है, चिट्ठी भी लिख लेती है, हम दोनों माँ-बाप को तो चारपाई से उठने तक नहीं देती, सारे काम खुद ही सँभालती है—सबसे पहले उठती है, सारा घर झाड़ती बुहारती है, हफ्ते में दो बार गाय के गोबर से सारा घर लीपती है, फिर नहा-धोकर भगवान की पूजा करती है, कोई व्रत ऐसा नहीं जो यह न करती हो और हाँ, यह हम साफ बता दें कि खेती-बाड़ी का काम यह नहीं जानती, क्योंकि हमारे यहाँ खेती नहीं होती।"

भाई साहब ने जवाब दिया था, "इसकी चिंता नहीं, हमारे यहाँ खेती तो होती है, पर कोई बहू-बेटी खेती के काम में हाथ नहीं बटाती, नौकर करता है सब कुछ।"

"बाकी आपने देख ही ली है, हमारी लड़की कैसी है।"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाई साहब यह कैसे कहते कि लड़की का मुँह तो देखा ही नहीं—ऐसा वह कह भी किस प्रकार सकते थे? आखिर वे लड़की के जेठ होते यदि रिश्ता तय हो जाता, और जेठ के लिए बहू का मुँह देखना एक अपराध-सा माना जाता था। खैर रिश्ता पक्का हो गया, शादी हो गई, भाभी घर आ गई और बहू की मुँह दिखाई होने लगी, औरतें, लड़कियों का हज्जूम जुट गया, थोड़ी भीड़-सी छँटी तो माँ ने पुकारा, "अरे रामा!"

"हाँ माँ", भाई साहब जोर से बोले।

"तू कहत्ता था के छोरी बड़ी सोहणी है।"

"हाँ माँ, देख कितनी गोरी चिट्टी है।"

"मुँह देक्ख्या था इसका?" माँ कुछ मुँह-सा बनाकर बोली थी।

"मुँह कोण दिखावै माँ, मैं तो फेर भी इतनी सारी देख आया।" डरते हुए भाई साहब ने उत्तर दिया था।

"वहाँ खात्तर करवाण, खीर पूरी खाण गया था?"

"पर हुया के माँ?"

"देख मुँह पै मात्ता के दाग हैं।"

"बहू, भुंडी है के?"

"ना भुंडी तो नहीं, पर और सोहणी लगती, मूँ पै दाग न होत्ते तो।"

तभी एक जाटनी बोली थी, "दादुदी! बहू तो सोहणी है—नाक सुआसी, मुँह बटुआ था, पेट घड़ा-सा—हाथ लगात्तेई मैल्ली होवै।"

माँ बोली थी, "हाँ, यू तो ठीक है, चोक्खी है बहू।"

"पीतम कहर्या था के दहेज मै बाइसिकल भी दी थी, पर पंडञ्जी ने ली नहीं।" पीतम की माँ जाटनी आँख फाड़ती सी बोली थी। माँ को इस बात का पता न था कि उसके बेटे को दहेज में साइकिल भी मिली थी। मैं तब बहुत छोटा-सा था, पर याद मुझे सब कुछ है, बारात विदा हो रही थी, दान दहेज का, सब सामान बस में चढ़वा लेने के पश्चात् नई साइकिल चढ़वा दी तो पिताजी ने कहा था, "ये क्या कर रहे हैं आप लोग?"

उनमें से एक बुजुर्ग बोला था, "बस एक छोटी-सी चीज दहेज में दे रहे हैं जमाई राजा के लिए, यूँ हमारी हैसियत क्या है?"

पिताजी ने डाँटते हुए कहा था, "नहीं, हम पड़िए हैं क्या, जो शनिश्चर का दान लें, साइकिल हम नहीं लेंगे।"

"पर पंडञ्जी, अब यह हमारे किस काम की? हमारे तो कोई लड़का

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी नहीं है जो उसे इस्तेमाल कर लेगा।''

''तो किसी और को दान कर दीजिएगा, हम बिल्कुल नहीं लेंगे, उतारिए इसे नीचे।''

पिताजी ने रुष्ट वाणी में कहा था। सारे गाँव में साइकिल ठुकराने का एक फसाना बन गया था।

मेरे ध्यान में फिर न जाने क्या-क्या आने लगा—सोचा कि आज पिता जी जीवित होते और मेरे पुत्र को दहेज में मिली कार पर उनकी वही प्रतिक्रिया होती और मैं? क्या कहूँ इसे—संस्कारों की हत्या? जमाने की रौ में बहने की चाह, माया मोह में संलिप्ति? अथवा परिवारजनों के लिए ईर्ष्या का विषय बनाना। यानि कुछ-कुछ अहंकार भावना? कह नहीं सकता, इतना जरूर कह सकता हूँ कि आज वे होते तो मेरे पुत्र को कार नहीं मिलती। मेरे पिता जी, अपने पुत्रों के दहेज से, कभी प्रसन्न नहीं हुए, बार-बार एक ही बात कहा करते थे, ''देखो, किसी लड़के की ससुराल से ज्यादा आया, अच्छा नहीं होता—हाँ मेरे से बड़े भाई में वे गुण है, वे संस्कार है जो उन्होंने पिता जी से ग्रहण किए है, कभी दहेज के नाम पर, उन्होंने पुत्र के विवाह में कोई माँग नहीं की जबकि उनके योग्य पुत्रों को काफी कुछ उपलब्ध हो सकता था। उनके बड़े लड़के के श्वसुर ने उनसे कहा था, ''आपकी कोई डिमांड?'' भाई साहब ने कहा था, ''हाँ, मुझे अपनी सिगरेट दहेज में दे दीजिए।'' और उन्होंने सिगरेट पीना छोड़ दिया था—

मेरे से बड़े भैया के लिए जो भाई साहब, लड़की देखने गए थे, उनके लिए लड़की किस प्रकार देखी गई थी, मुझे स्मरण नहीं। उनकी पत्नी वाकई सुंदर थी और भाई साहब से चार वर्ष बड़ी थी—तब बच्चे अक्सर गाया करते थे—''गैर गढ़ी, भई गैर गढ़ी, बन्ना छोट्टा बहू बड़ी'' मुझे लगा जैसे उनके गीत की सार्थकता पर एक मोहर लग गई है। उनकी बारात जब भाभी के दरवाजे पर पहुँची, तो सिर में मोड़ बाँधे भाई साहब गाँव के बच्चों के साथ कौड़ी खेलने लगे और भाभी ने शर्माते हुए अपनी किसी सहेली से कहा था—''मरा कौड़ियाँ खेल रहा है'', भाभी तब शर्माने की आयु प्राप्त कर चुकी थी। यह कथा परिवार में मजा लेने के लिए—अक्सर सुनाई जाती रही है।

विकास कहिए, प्रगति कहिए, उसका पहिया तो चलता रहता है, लड़की पसंद करने के तरीके में भी परिवर्तन आते रहे। गाँवों ने शहरों की

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

R.P.S
ARY-S
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओर पलायन करना शुरू कर दिया था। मैं भी शहर पहुँच चुका था, इसलिए गाँवों में लड़की पसंद करने के तरीके के परिवर्तनों से मैं लगभग अनभिज्ञ ही रहा है। हाँ शहरों में तद्विषयक परिवर्तनों में परिचित होता रहा।

प्रायः ऐसा होता था कि किसी परिचित ने बता दिया कि अमुक की लड़की अच्छी है, तो रिश्ता पक्का हो जाता था। लेकिन किसी के कहने पर यकीन नहीं करना चाहिए—यह भावना भी पनपने लगी थी। मेरे एक मित्र की शादी, उसके पिता ने अपने किसी मित्र की रिकमंडेशन पर, कर दी थी लेकिन लड़की के जिस रूप गुण की चर्चा, जो उन्होंने सुनी थी, वह उसके एकदम विपरीत निकली। फिर परिवर्तन की गाड़ी और आगे बढ़ी, परिवारजनों का स्वयं लड़की देखने जाने का चलन शुरू हो गया। प्रगति एक्सप्रेस अपनी गति से दौड़ती रही, प्रगतिशीलता हावी होती रही, बैटर च्वाइस की भावना पनपने लगी, फलतः समाचार पत्रों में मैट्रिमोनियल आने शुरू हो गए और देखते ही देखते वैवाहिक विज्ञापनों की बाढ़ आनी शुरू हो गई। मैंने अपने पुत्र की शादी में मैट्रीमोनियल का ही सहारा लिया था। लड़की देखने में लुकाछिपी बंद हुई, दोनों के फोटो के आदान-प्रदान के बाद, रस्टोरेंटों में लड़कियाँ देखने का चलन शुरू हुआ।

प्रगति एक्सप्रेस का अगला स्टेशन आया—परिवारजनों द्वारा लड़की पसंद आने पर—लड़के-लड़की को अकेले में, दो मिनिट बातें करने का अवसर दिया जाने लगा। पुत्र-हेतु मैंने जब लड़की पसंद कर ली तो उनसे कहा था कि कृपया इन दोनों को एक मिनट अकेले में बातें कर लेने दीजिए। वह सहर्ष तैयार हुए और उन्होंने ड्राइंगरूम के बराबर वाले कमरे में दोनों को बिठा दिया। दोनों ने एक-दूसरे की बातें सुनी। मेरे पुत्र ने कहा, "देखो, मेरा जीवन एकदम अस्थिर है, कभी यहाँ, कभी वहाँ, मैं नौकरी पर जाता रहता हूँ, विदेश भी हो आया हूँ, हो सकता है, फिर से यू.एस. जाना पड़े, मेरे माता-पिता दोनों वयोवृद्ध हैं, इनकी जिम्मेदारी तुम्हारी है। इस सबसे प्रसन्नतापूर्वक समझौता कर सको को हाँ करना वरना नहीं। कदाचित् तुम्हें मना करने में कुछ संकोच हो तो मैं इसे अपने ऊपर ले लूँगा और मैं ही कह दूँगा कि मुझे पसंद नहीं।" लड़की वाले भी चाहते हैं कि हमारी लड़की भी, लड़के का इंटरव्यू क्यूँ न ले। लड़का लड़की से बातें कर ले, इस भावना के पीछे मेरी एक स्पष्ट भावना थी कि मैं आए दिन लड़कों से यह सुन रहा था "पिताजी, आपने ही बाँध दिया है इसे मेरे पल्ले, अब आप जानें, भुगतो इसे।" तो मैं इस कलंक को

Central Library
185443
Gurukula Kangri Haridwar
CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
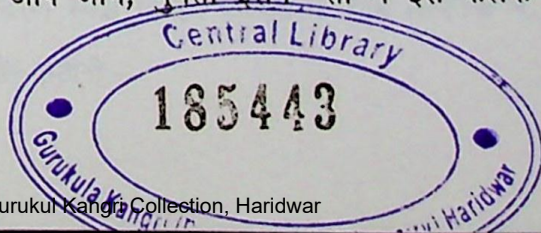
अपने माथे पर लेने को कतई तैयार नहीं था। मैंने ठोक बजाकर कह दिया था—"बेटा, जो कुछ है तेरे सामने है, कल को हमें कुछ मत कहना, मर्जी हो तो हाँ कर, वरना मना कर दो।"

"परिवर्तन का यह आखिरी स्टेशन नहीं था। अगला स्टेशन आ गया—वीडियो फिल्में बनने लगी हैं, उसे देखकर लड़के-लड़की अपनी रजामंदी देते हैं तो फिर लड़की को डेटिंग पर भेज दिया जाता है क्योंकि दो मिनट बैठकर बातें करने से यथेष्ठ जानकारी नहीं मिलती एक दूसरे की। डेटिंग का यह चलन अभी समाज की रग-रग में व्याप्त नहीं हुआ है, कुछ इलीट लोगों तक ही इसका प्रवेश हुआ है, लेकिन निश्चिंत रहिए, अच्छी-खासी जनसंख्या इससे ग्रस्त हो जाएगी। स्वच्छ पर्यावरण के गुण जिस अनुपात में प्रसरित होते हैं, उससे कहीं अधिक तेजी से दूषित पर्यावरण फैलता है—संक्रामक रोग की तरह। फिर सारे चलन, सारे फैशन ऊपर से चलकर ही तो नीचे तक पहुँचते हैं।

तो डेटिंग अवधि भी बढ़ने लगी। अति सभ्य संभ्रांत लोग तो अपने लड़के-लड़की को हनीमून के रिहर्सल जैसी डेटिंग पर शिमला, मसूरी, गोवा, मारीशस—जिसकी जैसी औकात, भेजने में भी नहीं हिचकते।

मैं यह सब सोच ही रहा था कि मुझे नींद आ गई, और गहरी नींद सोया। मैंने अपने बुजुर्ग मित्र से कहा, "प्रातः उठा तो मुझे रात की बात याद आ गई कि किस प्रकार मैंने नींद लाने के लिए मैट्रिमोनियल पढ़ने शुरू किए थे और किस प्रकार मैं पढ़ते-पढ़ते लड़की पसंद करने के तरीके के विकास पर सोचता रहा था, पर क्या करूँ, आँख लग गई थी और आगे यह प्रगति एक्सप्रेस किस स्टेशन पर जाकर रुकी होगी—इस पर विचार नहीं कर सका था। प्रातः उठकर, फ्रेश होकर मैं सोचने लगा कि इसका अगला पड़ाव क्या हो सकता है? चिंतन करते-करते इस निष्कर्ष पर पहुँचा—सही या गलत तो समय बताएगा क्योंकि अनुमान तो अनुमान है—कि लड़के-लड़की, दोनों को सुविधा दी जाएगी कि जाओ एक बच्चा पैदा कर लो और इस बीच तालमेल ठीक बैठा और सही जँचा तो रिश्ता पक्का।"

मित्र बोला, "और उससे अगला पड़ाव?"

मैंने कहा, "अल्ला जाने क्या होगा आगे?"

तो ऐसी स्मृति क्या भूले जाने योग्य है? इसे क्यूँ भूलूँ।

●

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्यूँ भूलूँ?

(मेरा विद्यारंभ संस्कार और सेठानी)

पिताजी ने मेरा विद्यारंभ संस्कार किया—नई तख्ती, नया बुदका, उसमें पिसी हुई खड़िया ऊपर से थोड़ा-सा पानी, नरसल की एक कलम, रामकुमार ब्रदर्स मुरादाबाद वालों का कायदा तथा एक थाली जिसमें रोटी, चावल, कलावा, गुड़ की डली, दूध आदि सामग्री रखी थी। पिताजी ने ॐ गणानांत्वागणपति...से शुरुआत कर ॐ स्वस्ति न इंद्रो वृद्धा श्रवाः बोलते हुए, न जाने किन-किन श्लोकों से गुजरे। ॐ स्वस्ति न इंद्रो को मैं कदापि नहीं भूल सकता क्योंकि उससे जुड़ी हुई एक मनोरंजक घटना/दुर्घटना है। मेरे यहाँ मंदिर में संस्कृत पाठशाला थी, पिता जी उसके सर्वेसर्वा थे। दूर-दराज के ब्राह्मण युवक वहाँ कर्मकांड की शिक्षा लेने आते थे। एक दिन ब्रह्मचारीगण मंदिर के चौंतरे पर बैठे पाठ रट रहे थे—ॐ स्वस्ति न इंद्रो वृद्धश्रवाः। कुएँ पर पानी भरने आई इंद्रो ने सुना और समझा कि ये मुझे गाली देते हुए कह रहे हैं—"सुसरी इंद्रो कटड़े कु भुस खुवा" और वह बड़बड़ाती चली गई। उसकी शिकायत सुन उसका बापू लट्ठ लेकर मंदिर में आ धमका। पिताजी ने उसे समझाया तो मामला रफा-दफा हुआ।

मैं आँखें बंद कर हाथ जोड़ बैठ गया। मन के भीतर क्या कुछ चल रहा था, कह नहीं सकता। पिताजी ने रोली पर जल के छींटे मारे अपनी अनामिका से उसे मिलाया और तख्ती पर ॐ स्वास्तिक का चिह्न बनाया। मैंने उनके आदेशानुसार रोली, अक्षत, कलावा आदि चढ़ाए। मेरे हाथ से कलम पकड़वा 'ओम्' लिखवाया, जिसका आकार तख्ती पर नहीं दिखाई दिया। मंदिर में प्रतिष्ठित शिव लिंग, देवी, गणेश जी का चरण स्पर्श कर पिताजी के चरण स्पर्श किए। कागज के एक लिफाफे में कुछ

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बताशे देकर मुझे अकेले ही स्कूल भेज दिया था। मैंने मुंशीजी को बताशे का लिफाफा पकड़ाया और पहली कक्षा के छात्रों में जाकर बैठ गया था।

मैं स्कूल जाने लगा। तख्ती को काले रंग से पोतने के लिए तवे, कढ़ाई आदि की तली से कालिख उतारता था, सरसों के तेल से जलते हुए दीपक के ऊपर एक सराई या दीपक उल्टा लटकाकर बैठ जाता, दीपक की लौ तेज करता और उस पर लगी कालिख को उतार लिया करता था, फिर उसमें दूध डालकर, भली प्रकार मिलाकर उससे तख्ती पोत लिया करता था। धीरे-धीरे, तख्ती पर काला रंग चढ़ जाता था। तख्ती सूख जाने पर मैं, उसे अपने सामने जमीन पर रख लेता और घुटनों के बल बैठकर काँच के एक गोल कड़े से, जिसे घोटा कहते थे, घोटता था। बड़े परिश्रम से तख्ती पर मैं इस प्रकार घोटा चलाता था, जैसे बढ़ई लकड़ी पर रंदा चला उसे चमकाता है। तख्ती चमक जाती थी। स्कूल से घर आते ही रात में उसे दूधमिली कालिख से पोतकर सुखाता था और अगले दिन प्रातः स्कूल जाने से पूर्व उसे घोटकर चमका लिया करता था। एक डोरी से बँधे हुए बुदके को अँगुली में लटका, एक चौकोर कपड़े के टुकड़े में कायदा, कलम लपेट उसे बगल में दबा, दूसरे हाथ में तख्ती लटका, और बच्चों के साथ स्कूल चला जाता था। स्कूल में मुंशीजी तख्ती पर, दूसरी तख्ती के सहारे पेंसिल से लाइनें खींच दिया करते थे और लिखने के गुर सिखाते थे। बहुत जल्दी मैं वर्णमाला लिखनी सीख गया था, सुंदर सुंदर अक्षर लिखने में मुझे आनंद आता था। मुंशी जी मुझसे सुलेख लिखवाया करते थे और मेरे सुलेख की प्रशंसा भी करते थे। जितना शौक मुझे पढ़ने-लिखने का था, उससे कहीं अधिक खेलकूद का। गेंद टोरा, गिल्ली डंडा मेरे प्रिय खेल हुआ करते थे, गेंद टोरे को मैं क्रिकेट का सजातीय मानता हूँ, जब अकेला होता था तो दौड़-दौड़ कर घेरा चलाया करता था। छुपा छिपी खेलते थे। गिल्ली डंडा, या गेंद टोरा खेलते-खेलते अक्सर मेरी मनस्थिति के भीतर एक द्वंद्व चलता रहता था। खेलते-खेलते सूर्यास्त हो जाता था, पर खेल खत्म नहीं होता था। मुझे मंदिर में बजते, पिताजी ने शंख की ध्वनि के उपरांत घरनावल, झाँझ बजने की आवाजें आनी शुरू हो जाती थीं, दिल धड़कता था क्योंकि पिताजी का कठोर आदेश था कि संध्या आरती के समय घर के सभी सदस्यों की उपस्थिति अनिवार्य थी। शंखध्वनि मुझे अपनी ओर खींचती और खेलानंद

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुझे पीछे की ओर, दोनों में रस्साकशी होती थी और अक्सर खेलानंद की जीत होती थी। मंदिर की घंटाध्वनि की विजय तब होती थी, जब मेरे हार जाने पर, मुझे दूसरे लड़के को पोत देना पड़ता था। वह कहता रह जाता था कि मेरा पोत दे और मैं "पिताजी मारेंगे।" कहता भाग खड़ा होता था। झटपट हाथ पैर धोकर चुपचाप आरती में सम्मिलित हो जाता था और घर के अन्य व्यक्तियों की तुलना में मेरा स्वर इतना ऊँचा हो जाता था कि पिता जी समझ जाते थे कि विद्याभूषण भी आरती में सम्मिलित है। इस प्रकार का चकमा मैं अक्सर पिता जी को दिया करता था।

ऐसी ही चोरी, मैं विशेषतः गर्मियों के दिनों की दोपहरी में किया करता था, जब माँ सो जाया करती थी। मुझे बेसन के बने गुड़ की चाशनी में पगे सेब खाने में बड़े स्वादिष्ट लगते थे, एक प्रकार से मैं गुड़ के सेवों का एडिक्ट हो गया था। तब ही नहीं, आज भी यदि मुझे बर्फी या गुलाबजामुन और गुड़ के सेव में से एक को चुनने को कहा जाए तो मैं गुड़ के सेव ही पसंद करूँगा। मुझे चाय में चीनी ज्यादा पीने वाला समझकर कदाचित् देखने वाला मुझे गँवार समझे, पर मैं हूँ कि आज भी मेरी चाय में कम-से-कम दो चम्मच चीनी डाली जाती है। घर के सभी लोग डरते रहते हैं कि डायविटीज हो जाएगी। मैं कहता हूँ कि आज तक हुई नहीं, अव कहाँ से टपक पड़ेगीं—नहीं मानता। मुझे चाय न पीनी मंजूर पर कम चीनी की नहीं पी सकता। अक्सर शूगर टैस्ट कराता रहता हूँ, वह नार्मल रहती है। मुझे लगता है कि बचपन में इतने अधिक गुड़ सेवन के कारण ही तो आज तक लगभग ठीक-ठाक-सा चलता आ रहा हूँ। आज मेरी यह धारणा पक-सी गई है कि गाँव के बच्चे तब शहरी बच्चों की अपेक्षा अधिक स्वस्थ हुआ करते थे। वैज्ञानिकों के शोध का विषय है। वह बात अलग है कि आज का फैशनेबुल गुड़, हानिकर हो—फैशन के चक्कर में इंसान क्या-क्या कष्ट नहीं उठा रहा, उसका बजट गड़बड़ा दिया है इस फैशन ने पर मेरा दृढ़ विश्वास है कि आज फैशनपरस्ती हमारे मन से तिरस्कृत हो जाए तो, हमारा जीवन कितना सुखदायी बन उठे, यह आजमाइश कर देखने की चीज है।

तो गर्मियों की दोपहरी में इस ताक में रहता था कि कब माँ सोए और कब मैं घर में कुंबल कर डालूँ। छिप-छिपकर मैं देखता रहता था कि माँ सोई कि नहीं—उसके सोते ही मैं दबे पाँव अनाज भरी बोरी के पास

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाता, उसमें से कभी चने, कभी मक्का, कभी गेहूँ, कमीज के पल्ले में भरता और चुपचाप पीछे के दरवाजे की कुंडी खोलकर, सिर निकलने लायक किवाड़ खोलता और नंगे पैर, तपती दोपहरी में मुन्ना बनिये की दुकान पर पहुँच जाता, सामने बिछी बोरी पर मैं कमीज का पल्ला झाड़ देता और वह मुट्ठी भर सेव मेरे पल्ले में डाल देता। मैं कहता, "मेरा लुभाव?" सुनकर वह दो-तीन टुकड़े मेरे हाथ में और पकड़ा देता था। गाँव का यह एक फैशन-सा है कि विशेषतः बच्चा, जब भी कभी कोई सामान खरीदकर चलता, तो चलने से पूर्व वह अपना 'लुभाव' लेना न भूलता था। मैं भी लुभाव लेकर, गुड़ के सेव खाता, घर पहुँच जाता था। कई बार मेरी चोरी पकड़ी भी गई थी, जब माँ अचानक उठ खड़ी होती थी। एक बार मेरे बाहर निकलते ही कुत्ता घर में आ घुसा, आँगन में रखे हुए बर्तनों को चाटने से जब बर्तन खड़क उठे तो माँ की आँखें खुलीं, माँ गाली देती उनके पीछे भाग उन्हें भगा देती थी। सोचती थी कि कुत्ता बंद दरवाजे से भीतर कैसे आया, उसने देखा कि विद्या गायब है, दरवाजे से बाहर निकल उसने देखा कि मैं मुँह चलाते हुए टिटार दोपहरी में नंगे पैर चला आ रहा हूँ। मेरे पहुँचते ही माँ की डाँट पड़ती थी–"मरे, कहकै तो जात्ता, दरवज्जा भी भेड़ कै नहीं गया, कुत्ता भित्तर घुस आया।" गाँव में प्रायः प्रत्येक घर के दरवाजे, दिन में केवल कुत्ते-बिल्ली की एंट्री होने के लिए ही बंद किए जाते थे, किसी आदमी के घुस आने का कोई मतलब नहीं था–और आज तो, अपवाद रूप में सैकिंड को भी घर का दरवाजा खुला नहीं रहता, हर व्यक्ति को हर बाहरी व्यक्ति चोर उचक्का नजर आने लगा है, आज आदमी की जाति में कैसा परिवर्तन आया है, कि उसे कहीं ईमानदारी नजर ही नहीं आती, चोरों को सभी नजर आते हैं चोर–चारों ओर चोरों का समाज दूधिया, परचूनिया, जबरदस्ती ट्यूशन पढ़ने को बाध्य करने वाला मास्टर, इलाज करने वाला डॉक्टर, रक्षा करने वाला सिपाही, जनता को उपदेश देने वाला गुरु, देश को चलाने वाले अथवा चला डालने की उम्मीद से लबरेज पक्षी-विपक्षी नेता, रिटायरमेंट के बाद वयोवृद्धों तक की पेंशन में से कुछ-न-कुछ अर्पित कर देने को लाचार बनाकर देने वाले, सरकारी बाबू, परेशानी में हाँफती हुई जनता को बिजली पानी से राहत देने वाले कर्मचारी, बड़े-से-बड़े और छोटे-से-छोटे यहाँ तक कि झाड़-पोंछा लगाने वाली महरी, विश्वविद्यालयों, कॉलेजों तक के प्रोफेसर जिनमें, मैं भी शामिल हूँ, अपने पेशे से ईमानदार

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं रहे, सभी चोर। चारों तरफ एक ही थाली के चट्टे-बट्टे नजर आते हैं, किसी भी ईमानदार की खोज, भूसे के ढेर में सुई की तलाश करना है। किसी का किसी पर विश्वास नहीं रह गया, अब तो बाप, बेटा, भाई, पति, पत्नी, यार, दोस्त—सभी एक-दूसरे के प्रति बेईमान हैं। मन में कुछ, जबाँ पर कुछ।

सारांश है कि मैं बचपन से लेकर आज तक चोरी करता चला आ रहा हूँ, फिर मुझे क्या हक है कि मैं किसी और को चोर कहूँ, माना कि आदमी स्वयं को पाक-साफ सिद्ध करते हुए दूसरे को चोर समझता है, यह जनरल फिनोमिना है...तो मैं, गुड़ एडिक्ट था। उसके साथ ही मुझे एक बात और याद आ गई अपने बचपन की। सहदेव मेरा अंतरंग साथी था। चूँकि मैं उसका चाचा हुआ करता था, इसलिए उसकी आँखों में मेरे प्रति बचपन से ही लिहाज था। बड़ा होकर वह मुझे चाचाजी कहने लगा था। मेरे पैर भी छू लिया करता था। सहदेव को दिवंगत हुए कई वर्ष हो गए। उसकी स्थिति में मैंने कभी कोई परिवर्तन नहीं देखा।

एक दिन मैं और सहदेव आम के पेड़ के नीचे बैठे आम चूस रहे थे। हमारे खेत में एक ही आम्र-वृक्ष था। उसके देसी आम अत्यधिक मीठे और स्वादिष्ट हुआ करते थे। आम चूसते-चूसते मैंने सहदेव से कहा—"सहदेव, बड़ा होकर तू के बणैगा?"

"पहलवान बणूँगा, फेर मन्नू के छोरे नै ऐसी पटकी द्यूँगा के सारी जिंदगी याद रक्खैगा।" अपनी दाईं तर्जनी को छिपाते हुए वह बोला था, "तेरे चोद्दे, हराम के बीज नै, मनै तळै गेर के मेरे मुँह पै गुट्टू मार्ये थे, मेरी उँगळी पै काट खाया था, देख कैसी सूज ग्यी है।" वाकई उसकी तर्जनी सूज गई थी और वह सदा सूजी ही रही, कभी ठीक नहीं हुई। फिर सहदेव ने पूछा, "विद्या बड़ा होकै तू के बणैगा?"

"मैं हवाई जहाज उड़ाया करूँगा।"

"मनै अपणे साथ बठाया करैगा?"

"ना, तनै नहीं, शीलो नै बठाया करूँगा, तू पिच्छे बैठ जइयो, शीलो मेरे बराबर में बैठ्ठा करैगी।"

आज मुझे शीलो रह-रहकर याद आती है। शीलो अत्यणिक सुंदर लड़की थी, उम्र में मुझसे बड़ी थी, मुझे वह बहुत अच्छी लगती थी, वे कई बहनें थीं, बड़ी तो मोटी-सी, उतनी सुंदर नहीं लगती थी, पर उसके

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाद शीलो बहुत सुंदर थी, शीलो से छोटी नुम्मा थी, वह शीलो से भी अधिक सुंदर थी, ऐसी रूपवती लड़कियाँ कम ही दिखाई पड़ती हैं। घर से 7, 8 मकान छोड़कर पूर्व की ओर हमारी ही लाइन में उनका मकान था। इन बहनों का पूरा नाम क्या था पता नहीं, गाँव में, न कोई किसी को उसके पूरे नाम से पुकारता था, न ही पूरा नाम जानने की कोशिश करता था। यहाँ तक कि स्कूल में भी कोई रजिस्टर आदि नहीं रहता था जिसमें तो कम-से-कम पूरा नाम लिखा हो, ऐसा कोई रिकार्ड नहीं होता था। शीलो के पिता, हर निवास एक खूबसूरत नौ जवान थे, वे अकेले ही फुटबाल खेला करते थे, जोर से फुटबाल उछाली और नीचे गिरती फुटबाल को, उचककर जोर से सिर मार ऊपर उछाल दिया करते थे। शीलो की माँ एक शहरी, संभ्रात पढ़ी-लिखी महिला थी। उनके रहन-सहन, विशाल घर की तुलना जब मैं अपने घर से करता था तो राजा भोज और गंगू तेली जैसा अंतर दिखाई पड़ता था। शीलो की माँ गौर वर्णा, मोटी-सी सेठानी जैसी लगती थी, मूढे पर बैठी पान चबाती रहती थी, साड़ी बलाउज उनका पहनावा था, बोलचाल शालीन थी। मुझे वे बहुत प्यार करती थी, मैं उनके घर प्रायः जाया करता था। वे मुझसे मुस्कराकर कहती, "अरे विद्याभूषण, आओ, आ जाओ।" मुझे कुछ-न-कुछ खाने को दिया करती थी। में शीलो से बतिया लिया करता था।

सेठानी, गाँव में किसी के घर नहीं जाती थी, लेकिन वे माँ के पास अक्सर आती रहती थी। माँ को गाँव में एक सम्माननीय दर्जा प्राप्त था, छोटे-बड़े सब माँ को दाद्दी कहा करते थे। सेठानी आती थी, उन्हें देखकर माँ भी खिल उठती थी। एक दिन वे आई, माँ के पैर छूते हुए बोली, "दादीजी, पैरों पड़ूँ।" और माँ अपना चिरपचित 'दुदधो न्हाओ पुत्तो फलो' का आशीर्वाद दे देती थी। माँ ने पीढ़ा दिया, सेठानी उस पर बैठ गई। इधर उधर की बातें होती रही। मैं, अपने खेल में व्यस्त रहते हुए भी उनकी बातें सुनता रहा था।

"और तो सब ठीक है बहू?"

"कुछ ठीक नहीं दादी जी।"

"क्यूँ के हुया?"

"क्या कहूँ दादी जी", कहते कहते वे रो पड़ी।

"चुप हो जा बहू, धीरज रख, परमात्मा सब ठीक करैगा?" शायद

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माँ को उनके दर्द का कुछ अहसास था।

"क्या खाक ठीक करैगा परमात्मा? मैं तो कहीं भी मुँह दिखाने लायक नहीं रही दादीजी।"

"के बात है, बता?"

सेठानी ने देखा कि जैसे माँ के सामने अपना दुखड़ा रोकर उसे उसका हल मिल जाएगा।

वह बोली, "आज तो दादीजी, बड़ी लड़की, गंडासा उठा कर बाप की गर्दन काट डालने के लिए उस पर झपट पड़ी—और चिंघाड़कर बोली, 'आज तेरी गर्दन काटकर धर दूँगी, तुझे जिंदा नहीं छोड़ूँगी—तूनै मेरा और शीलो का तो सत्यानाश कर ही दिया, अब नुम्मा को भी खराब करना चाहता है, चंडाल बाप मैं बताऊँगी तुझे कुत्ते, उसे बर्बाद नहीं होने दूँगी।" और उसे गालियों पर गालियाँ दे रही थी। मैं झपटकर भीतर कमरे में गई, मैंने रूपा की कोली भर उसके हाथ से गंडासा छीना और बोली, चुपकर बेटी, कोई सुन लेगा।" और सिठानी फफक-फफककर रो पड़ी। माँ ने भी अपने ओन्ने से अपने नेत्र पोंछे। उसे ढाढस बँधाती बँधाती बोली, "बहू, चुपकर, मेरे आग्गे तो कह दिया, किसी और के आग्गे मत कह दियो, छोरियाँ नै उठाणा भी तो है, वरना इनकी जिंदगी खराब हो जागी।"

"जिंदगी तो इनकी खराब हो चुकी दादीजी, अब क्या कसर बाकी है? ये तो रोज-रोज का किस्सा है, एक दफा का हो तो मन समझा ले आदमी। आपका बेटा कहता है, अरे हमारा माल है, हमतै पहले कोई गैर उसे चख ले। रो-धोकर सेठानी चली गई थी, मेरे मानसपटल पर एक अद्‌भुत कहूँ, विचित्र कहूँ, घृणित कहूँ, क्या कहूँ, कह नहीं सकता—चित्र एंग्रेव्ड हो गया। लाख कोशिश के बाद भी इस चित्र को आज तक न मिटा पाया। सोचता हूँ ऐसी कौन-सी तराजू है जिस पर रख, उस बाप को तौलकर उसका मूल्यांकन कर सकूँ।

आज पीछे मुड़कर झाँकता हूँ तो देखता हूँ कि सहदेव चला गया है लेकिन उसने पहलवान बनने के अपने संकल्प को पूरा किया। दूर दूर तक के गाँवों में कुश्ती दंगल जीत-जीतकर पहलवान सहदवे नाम से वह प्रख्यात हो गया, और गाँव की कहावत, 'रथ के बळद और पहलवान की बुढ़ाप्पे में बड़ी दुर्गत होवे'—उस पर चरितार्थ हुई, वृद्धावस्था आने पर सहदेव को घी दूध की वह खुराक नहीं मिल सकी, लड़कों में से उसका

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक भी लड़का उसका सही भार न उठा सका और जवानी में नाल से घी पीने वाले रथ के बैल की भाँति बुढ़ापे में उपेक्षित होकर काल कवलित हो गया। और मैं? हवाई जहाज तो न उड़ा सका, हाँ हवाई जहाज में बैठ अनेक बार देश-विदेश की सैर जरूर कर आया हूँ।

याद नहीं कि आज शीलो, रूपा है भी या नहीं, पर हर निवास और सेठानी तो इस दुनिया में हैं ही नहीं और सबसे छोटी नुम्मा का रूप मेरी आँखों में आज भी दहक रहा है। माँ बताया करती थी कि नुम्मा के बाल इतने भारी और लम्बे हैं कि वह जमीन पर बैठकर कंघी नहीं करती थी, पीढ़े पर बैठकर कंघी करती है, तब कहीं जाकर उसके बाल जमीन पर पड़, गंदे होने से बच पाते हैं। मैंने सातवीं क्लास में एडमिशन ले लिया था। उन्हीं दिनों मेरठ के एक निम्न मध्यवर्गीय वैश्य परिवार के लड़के के साथ नुम्मा का पाणिग्रहण संस्कार हो गया था। मैंने उसके दूल्हे को देखा था 'कौवे की चौंच में अनार की कली।' देखकर बड़ा दुख हुआ था। मेरठ में उसके घर जाना चाहता था कि नुम्मा कैसी है, पर हिम्मत न संजो सका था। यह सोचकर मैंने आगे बढ़ते-बढ़ते पैर पीछे खिसका लिए कि कहीं नुम्मा यह न समझ बैठे कि विद्या मेरी खिल्ली उड़ाने, मेरे घर आया है और कहीं वह हीन-भावना से ग्रस्त न हो जाए।

और मैं तय नहीं कर पाया कि उसे अंधविश्वास कहूँ, या इसे ही सत्य मान लूँ? सेठानी को यादकर प्रकृति की महिमा को स्वीकार करने के लिए बाध्य होना पड़ता है—कदाचित् प्रकृति ने स्त्री जाति को यह गुण नहीं दिया कि वह 'कहा भी न जाए, चुप रहा भी न जाए' की कशमकश में, कहे बिना रह सके। मन की बात भीतर ही भीतर गाड़कर दफना दे। अन्यथा कौन स्त्री अपने पति की करतूतों को दूसरे के समक्ष एकदम नंगा कर देती है। कदाचित् इतने भारी बोझ को उठाए-उठाए वह जी नहीं सकती थी, किसी नितांत अपने के समक्ष, एकदम नग्न-सी हो जाती है और अपने हृदय का भार उतार फेंकने की असफल चेष्टा उसकी लाचारी बन जाती है।

बालपन की ऐसी-ऐसी स्मृतियों को कुत्ते की तरह दुत्कारकर बाहर निकाल फेंकना भी चाहूँ तो वे पूँछ हिलाती सी जीभ लपलपाती हुई फिर आ धमकती है, कैसे उन्हें धक्का दे दूँ, जब बिन बुलाए मेहमान की भाँति आ धमकती है तो उन्हें भूलें भी तो क्यूँ भूलूँ?

●

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्यूँ भूलूँ?

(जूँएँ एवं शौच-निवृत्ति-पीड़ा)

बच्चों के तरह-तरह के कार्य, उनकी शरारतें या तो बुद्धि प्रेरित होते हैं या किसी की आज्ञा से घटित होते हैं। उन कार्यों में से अनेक कार्य ऐसे होते हैं जिनकी एक अमिट छाप उनके मानस पर पड़ती है और वही स्मृति-रूपा बनकर मृत्यु-पर्यंत उनके नेत्रों के समक्ष फिल्मी सीन की भाँति चलती रहती हैं। ऐसी अनेकानेक घटनाएँ, मेरे अंतर में तैरती रहती हैं।

पता नहीं चलन था या अभिभावकों के सामने उनकी लाचारी थी–तब गाँव में बच्चे क्या, कुछेक लोगों को छोड़कर, बड़े भी नंगे पैर रहा करते थे–सर्दी में भी और गर्मी में भी और बरसात में तो नंगे पैर रहना आवश्यक था क्योंकि रबर प्लास्टिक के जूते तब गाँव में उपलब्ध नहीं थे और चमड़े की जूती पानी में क्यूँकर भिगोई जाती? महीनों नंगे पैर फिरने के बाद किसी ब्याह शादी के बहाने, आस-पास के गाँव में लगने वाली साप्ताहिक पैंठ से, मुश्किल से लाई गई जूतियाँ बच्चों को नसीब होती थीं। नई जूती पहनकर बच्चा उमंग में नहा उठता था, उल्लास में वह दूसरे बच्चों को, अपनी जूती दिखाता फिरता था। गर्मियों में तपती रेत में नंगे पैर चलने में उन्हें बड़ी पीड़ा होती थी और बच्चे के शरीर पर, नाम मात्र के वस्त्र होते थे–कुर्ता या कमीज–बस, नीचे बहुत हुआ तो लंगोटी। डेढ़ दो साल की उम्र तक तो उसे लंगोटी पहनाना जरूरी नहीं समझा जाता था।

अधिकांश बच्चे नंगधड़ंग, हाथ में रोटी का टुकड़ा और गुड़ की डली लिए होते थे, बहती नाक को अपनी कलाई से पोंछ लिया करते थे, कमीज पहने हो तो उसके कफ से रूमाल का काम कर नाक, पोंछ लिया

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करते थे। अन्यथा नाक पर भिनकती मक्खियों को हाथ से उडाते रहते थे और जीभ बाहर निकाल, अपनी ओर मोड़ते हुए नमकीन नकरस चाट लिया करते थे और नाक यदि सूखी हो तो उससे चूहा निकाल, उस पर दृष्टिपात करते हुए जीभ पर रख लेते थे। सर्दियों में कमीज के कफ नकरस पालिश से कलफदार और चमकीले हो जाया करते थे।

20, 25 दिनों में जब बच्चे की कमीज में जुँओं की फसल तैयार हो जाती थी और वह कभी बाईं बगल में, कभी दाईं बगल में, कभी गले के पीछे, कमीज में कभी ऊपर से, कभी नीचे से हाथ डाल-डालकर, इधर-से-उधर, जल्दी-जल्दी किनचता सा ऊँह ऊँह, करता, सीधा अपनी अँगुलियों के बढ़े नाखूनों से खुजा-खुजाकर शरीर के उन हिस्सों को रक्त चुवाने की सी स्थिति में पहुँचा देता था, तब बच्चे की माँ या कोई और बड़ी-बूढ़ी, बच्चे को धूप में बिठाकर, उसकी कमीज उतार, उसे उलटकर किसी डंडी से ऐसे झाड़ती थी जैसे कोई हाथ में पकड़ी गुड़ की डली से चिपटे चेंटों को झटक-झटककर, बार-बार फुँह फुँह कर नीचे गिराता जाता है। कमीज से नीचे गिरी हुई जुँओं में भगदड़ मच जाती थी और वह अपनी जूती से, नाखूनों से उन्हें कुचल-कुचलकर मारती। तब ऐसा दृश्य साकार हो उठता था जैसे अवैध कालोनी के डिमोलिशनार्थ आया हुआ जत्था वहाँ तोड़-फोड़ मचा रहा हो और उस कारण वहाँ के निवासियों में एक भगदड़ मच गई हो।

ऐसे जूँकांड अभी भी कहीं-कहीं दिखाई पड़ जाते हैं। जुँओं के आतंक से बच्चे ही नहीं, बड़े भी पीड़ित रहते थे—बड़े अपने पायजामे को पहने-पहने ही यदा-कदा ऊपर से उलटकर गर्दन नीची कर जुओं को खोज लिया करते थे, स्त्रियाँ अपनी सलवारों, लहँगों से जुएँ निकाला करती थीं। एक दृश्य तो आज भी चलते फिरते दिखाई दे जाता है—एक स्त्री बाल खोले जमीन पर बैठी है, उसके पीछे पीढ़े पर दूसरी स्त्री बैठी है और उसके सिर के बालों को इधर-उधर करती हुई जूँएँ इस प्रकार खोजती हैं जैसे लंबी-लंबी घास के बीच गिरी हुई कोई अपनी छोटी-सी कीमती चीज, अठन्नी आदि खोज रही हो। जूँ दिखाई पड़ने पर वह उसे तर्जनी और अँगूठे के नाखूनों के बीच दबाकर बालों के सहारे सावधानी से बाहर खींचती है, उसे एक अँगूठे के नख पर रख, दूसरे के नख से 'कट' की ध्वनि के साथ हलाल कर देती है। दूसरी ओर मैं प्रायः देखता हूँ कि रातोंरात एक झुग्गी-झोंपड़ी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बस्ती बस जाती है, कुछ दिनों में उखाड़ फेंकी जाती है, थोड़े दिनों बाद फिर बस जाती है और फिर उखाड़ फेंकी जाती है, यह क्रम चलता रहता है, और मैं निर्माण, ध्वंस के इस कार्य को बचपन से देखता चला आ रहा हूँ। विज्ञान ने अपनी ऐसी तैसी मरा ली, जूँ मारने भगाने के अनेक पाउडर, शैम्पू वगैरह बना डाले पर रक्त बीच की तरह एक मारो तो दस पैदा हो जाते हैं, इनका जड़ोन्मूलन नहीं हो सका।

बच्चे की कमीज तार-तार होने पर ही उसे नई कमीज नसीब होती थी। बच्चा ही क्या, बड़ों की दशा भी लगभग ऐसी ही रहती थी। घर के चार-पाँच पुरुषों के लिए एक धोती कुर्ता ही पर्याप्त होता था। जब किसी एक को कहीं गमीने में जाना होता तो वह उसे पहन जाता था। कुछ फैशन माइंडेड लोग कुर्ते पर इस्त्री कर लिया करते थे। गाँवों में शहर की भाँति कपड़े प्रैस करने का रिवाज तो था नहीं, तो वे येन-केन प्रकारेण अपनी जुगत भिड़ाकर अपनी कमीज प्रैस कर लिया करते थे। मुझे अच्छी तरह याद है मेरे बीच के, तीसरे बड़े भैया जब कभी अपनी ससुराल जाया करते थे तो अपनी कमीज प्रैस कर लिया करते थे—बेपैंदी के एक लोटे में अंगारे डालकर, लोटा गर्म होने पर, किसी कपड़े से उसका मुँह ढककर, उसे ऊपर से पकड़, लोटे को कमीज पर फिरा-फिराकर उससे प्रैस कर लिया करते थे। प्रैस से संबंधित एक घटना मुझे याद आ गई—टाइम्स ऑफ इंडिया ग्रुप के 'पराग' के संपादक मेरठ निवासी आनंद प्रकाश जैन की सहायता से, मेरे मित्र लक्ष्मी चंद्र गुप्त ने 'पराग' में सहसंपादक पद का भार सँभाला और मुझे मेरठ लिखा कि अपनी भाभी (मेरी पत्नी) को लेकर बंबई चले आओ। बंबई की सैर और मित्र के आग्रह को मैं टाल नहीं सका और भाभी को लेकर मैं बंबई के लिए रवाना हुआ। दून एक्सप्रेस, प्रातः सूर्योदय के पाश्चात् बंबई पहुँचती थी। मैं सोकर उठा और खिड़की के साथ वाली सीट पर बैठकर बंबई की छटा निहारने लगा। एक दीवार पर मैंने लिखा देखा—"स्त्री अच्छी आहे, स्त्री चालू आहे।" पढ़ते ही क्षण भर को मैं चौंका—व्यभिचार का ऐसा खुला निमंत्रण? इतनी बेशर्मी के साथ? लेकिन तत्काल ही मेरी समझ में उसका भावार्थ आ गया और एक आश्चर्य-सा हुआ कि कपड़े इस्तरी करने का ऐसा बढ़िया विज्ञापन!

तब कोई भी बड़ा-बूढ़ा हीन-भावना से ग्रस्त नहीं लगता था—एक बार जरूर लगा कि हमारा भंगी हरफुल्ला कहीं हीन-भावना से ग्रस्त तो नहीं था

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब पिताजी ने उससे एक दिन पूछा था "अरे हरफुल्ला, तेरे क्या हुआ?"

"गरीब आदमी के के होणा है पंडज्जी? छोरा या छोरी। छोरी हुई है।" हरफुल्ला ने जवाब दिया था। मुझे हरफुल्ला का वह मूँछों वाला चेहरा आज तक याद है, याद है उसका भोलापन। मैंने मन में कहा था कि हरफुल्ला! गरीब आदमियों के छोरा या छोरी ही पैदा होते हैं, अमीरों के यहाँ तो गधे-घोड़े पैदा होते हैं। हरफुल्ला के चेहरे पर मात्र एक भोलापन था और कुछ नहीं, जब उसने यह कहा था।

हाँ तो मैं कह रहा था कि कहीं मेहमानदारी में जाते समय, सज-धज कर जाने की एषणा जरूर होती थी तब लगता था कि व्यक्ति अपनी सम्पन्नता का झण्डा गाड़ना चाहता है और आज हम अपनी इज्जत की रक्षा—विशेषतः अभ्यागतों के समक्ष जिस प्रकार करते हैं—चाहे पड़ौसी के यहाँ से बच्चे को चुपचाप भेजकर प्लेट-प्याले मँगवाने पड़ें या बिस्कुट नमकीन उधार मँगवाना पड़े? कदम-कदम पर हम हीन भावनाग्रस्त रहते हैं, सतर्क रहते हैं कि कहीं-दा....ग न लग जाए। कदाचित् अमीरों के यहाँ यह सब नहीं होता, उनकी नाक कभी नहीं कटती—नकटे की नाक कटी, सवा हाथ और वढ़ी। उल्टे बिना किसी खर्च के उनकी गाथा का विज्ञापन छप जाता है।

तो मुझे नंगे पैर बाहर निकलने में कोई शर्म नहीं आती थी, बहती नाक पोंछने से चमकदार कमीज—कफ मुझे तकलीफ नहीं देते थे। तकलीफ थी तो बस सर्दियों और बरसात में। विशेषतः तकलीफ मुझे तब होती थी जब सर्दियों में प्रातःकाल, शौच जाने के लिए पानी भरा लोटा लेकर, नंगे पैर खेत में जाता था और एक तयशुदा प्रक्रिया के साथ शौच निवृत्त होता था—ठंडी सुन्न अँगुलियों से लोटा पकड़े-पकड़े खेत में जाता था, खेत में खड़ी फसल के कारण, बैठने के लिए थोड़ी सी जगह तलाश कर वहाँ बैठने की चेष्टा करता तो, दिखाई देता कि कोई और चतुर सुजान मुझसे पहले ही बाजी मार गया और मुझे नाक-भौं सिकोड़ने का मौका देकर चलता बना। लाचारीवश मैं खेत में खाली जगह की ओर भागता था, खाली भूमि देखकर, जिधर से हवा आती थी उस ओर को मुँह करके बैठता था ताकि बदबू नाक से न टकराकर, पीछे की ओर हवा के साथ उड़ जाए—लोटा जमीन पर रखा और शौचासन में बैठा, एक झटके में जो कुछ बाहर निकाल सकता था, उसकी एक छोटी-सी ढेरी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगा दी। बैठा-बैठा थोड़ा आगे सरका, लोटे को भी आगे सरका लिया, फिर अपेक्षाकृत एक छोटी ढेरी लगाई, लोटे को थामे, फिर थोड़ा आगे सरकाया, फिर उससे छोटी—करते-करते मैं पीछे गर्दन झुकाकर देख लेता था कि जैसे एक किलो, आधा किलो, 200 ग्राम, 100 ग्राम और 50 ग्राम के गोल-गोल बट्टे एक पंक्ति में रखे हैं और यह क्रम तब तक चलता रहता था जब तक कि भीतर से 'नो मोर' का सिग्नल न मिल जाए। फिर मैं लोटा पकड़े दाएँ और बाएँ दोनों हाथों को पीछे की ओर ले जाता, बाएँ हाथ की चुल्लू में पानी डालता और मल-द्वार प्रक्षालन करता, फिर दुबारा चुल्लू भरता और फिर प्रक्षालन करता, इसी प्रकार 6-7 बार तब तक इस क्रिया की पुनरावृत्ति करता रहता जब तक कि लोटा निर्जल नहीं बन जाता, हाँ अन्तिम चुल्लू से मैं अंगुलियाँ ही आपस में घुमा-फिरा कर पानी झाड़ दिया करता था।

एक दिन मैंने शौच-निवृत्त हुए एक लड़के से पूछा—

"अरै तनै हग कै हाथ नईं धोए?"

"ना, मैं ना धोत्ता।" उसने कहा।

"फिर चुत्तड़ किस ढाळ साफ करै?"

"मैं तो माट्टी के डळे तै पूँछ ल्यूँ, फेर रेत पै बैठकै चूतड़ाँ नै आगे-पिच्छै रगड़ कै घीसणी कर ल्यूँ।" इंफेक्शन आदि के डर से तो आज माडर्न मैन परेशान है, वह टायलेट पेपर का इस्तेमाल करता है, पता नहीं मलद्वार टायलेट पेपर से निर्मल हो भी जाता है कि नहीं? बहरहाल जो सफाई पानी से होती है वह पेपर से तो कदापि सम्भव नहीं। तब मैंने इंफैक्शन जैसा कुछ नहीं सुना था।

इतनी देर में सर्दी ने मेरे बाजे बजा दिए थे। खाली लोटा लिए घर आया, कुएँ की मेंढ़ के पास नाली के ऊपर बनी एक चौकोर-सी हौदी में पड़ी हुई पीली मिट्टी की एक डली दाएँ हाथ से उठाई और अँगूठे से थोड़ी सी मिट्टी तोड़कर बाएँ हाथ की अँगुलियाँ पर गिराई, हांथ धुलवाने वाले किसी ने, झुके-झुके लोटे से एक दो-बूँद उस पर डाली, मिट्टी गीली होने पर अँगूठे की सहायता से बाईं अँगुलियाँ इधर-उधर आपस मैं रगड़ा, उस पर फिर पानी डालकर धुलवाया गया, दूसरी और तीसरी बार भी मैंने दाएँ हाथ की मिट्टी बाईं हथेली पर डाली, उन्हें धुलवाया गया—फिर दाएँ हाथ से मिट्टी लेकर दोनों हाथों को मल-मलकर धोया। हाथ धुलवाने

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाला व्यक्ति झुके-झुके पानी डालता जाता था। संक्षेप में, पहले अकेले बाएँ हाथ की अँगुलियों को, फिर दोनों हाथों को ऊपर-नीचे तीन-तीन बार धुलाया या धोया जाता था और पीली मिट्टी से लोटा भी रगड़-रगड़कर माँजा जाता था।

थोड़ा बड़ा हो जाने पर मैं स्वयं ही दाएँ हाथ की कलाई से जल भरा लोटा लुढ़का-लुढ़का कर थोड़ा-थोड़ा पानी डाल लिया करता था। मंजे हुए लोटे में पानी भरा फिर कुल्ला करता था, पैर धोता था और चैन की एक साँस लेता था। मुझे लगता था, दिन का सबसे कठिन कार्य निपटा लिया और मन में स्वच्छता के साथ शुचिता का भाव भी हिलोरे मारने लगता था। जिस दिन सर्दी ज्यादा होती थी उस दिन इस क्रिया को फटाफट निपटा कर मैं रजाई मैं जा दुबकता था।

मैंने लोगों को अक्सर यह कहते सुना था "वड़ा अक्लमंद का चोद्दा बण्या फिरै, गाँड धोण तक की तो तमीज नहीं।" शुरू-शुरू में इसका अर्थ-गांभीर्य मेरे पल्ले नहीं पड़ा, सोचता था चूतड़ धोने में कौन-सी अक्ल की जरूरत है, पानी डाला और धो लिए। बड़ा होने पर इस कला में निहित वैज्ञानिकता से पर्दा उठा। आगे से हाथ धोने पर, सावधानी बरतने के बावजूद मल सनी अँगुलियाँ अंडकोष से टकरा सकती थी और पीछे से धोने पर ऐसा कोई खतरा नहीं।

सर्दी के मौसम में शौच निवृत्ति की क्रिया से कभी-कभी अत्यधिक पीड़ा पहुँचती थी जब कोहरा घिरा हुआ होता। दाँत किटकिटा रहे होते और साँय-साँय बर्फीली हवा तांडव मचा रही होती। भीतर प्रायः नेचरकॉल की घंटी बजती थी, मैं शीत प्रकोप के भय से उसकी अनसुनी कर दिया करता था, फिर दुबारा पेट में उमड़-घुमड़ होती थी, फिर जोर लगाकर उधर से ध्यान हटाए रजाई में दुबका पड़ा रहता था, आखिर बकरे की माँ कब तक खैर मनाती? बाहर निकल भागने को व्याकुल कैदी ने अपना आक्रमण तेज कर दिया, लगा किले का बंद दरवाजा शत्रु के किलाभेदी सैनिकों के बारंबार प्रहार से टूटकर गिरने ही वाला है तो मैं रिजाई से निकल ऐसे दौड़ पड़ता था मानो मेरे पीछे साँप लगा हो तब लोटा लेकर उसे पानी से भरने का अवकाश कहाँ था? और बिना इस बात की चिंता किए कि कोई देख रहा है, सिर कंधों के बीच छुपाकर खेत में बैठते ही एक झटके में ही भरड़ के विस्फोट के साथ पेट साफ। गाँव के

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बड़े लोग ऐसी क्रिया की उपमा देते हुए कहा करते थे—"चाणचक डाळा सा टूट्या और फारिग।"

फारिग हो चुकने पर उस भीषण शीत में भी मुझे एक सुखानुभूति हुई। पर ऐसी सर्दी में हाथ पानी लेना और वह भी तालाब के पानी से, मुझे अत्यधिक चैलेंजिंग महसूस हुआ। लेकिन लाचारी थी, प्राण जाएँ पर संस्कार न जाई, धोवा धाई तो करनी ही थी, उस हेतु मैं दाँत किटकिटाता थोड़ी दूर स्थित जोहड़ पर पहुँचा, कोहरे में लिपटे हुए तालाब और उसके पाला जमे पानी को देखकर मेरी साँस ऊपर की ऊपर और नीचे की नीचे, कोई विकल्प न होने के बावजूद भी क्या करूँ, क्या न करूँ की भावना एक बार मन में आई, प्राणों तक में सिहरन सी दौड़ गई और अपने प्राणों की चिंता किए बिना जिस प्रकार एक सैनिक 'मत चूको चौहान' भाव से शत्रु पर टूट पड़ता है, मैंने तालाब के हाड़ कँपा देने वाले जल से दो-दो हाथ कर अपनी स्वच्छता और संस्कारों की रक्षा की। बस इतना अंतर जरूर रहा कि लोटे के पानी से 6, 7 बार मलद्वार साफ करता था और अब दो एक ही बार में काम निपटा दिया भले ही, मनोनुकूल सफाई न हुई हो।

सर्दियों में कभी-कभी कब्ज होने के कारण भी मेरी दशा कम खराब नहीं होती थी। भीतर सुषुप्त से पड़े पिंड से खुशामद सी करनी पड़ती थी कि हाथ-पैर जोड़ने पड़ते थे कि मुझ पर तरस खा, जल्दी किस्सा निपटा, पर वह कब किसकी सुनता है? बच्चे की तरह जिद कर बैठता है, नहीं आता—मेरी म-र-जी। उसे कहते-कहते मुझे बूम साहब की याद आ गई—बूम साहब, मेरठ के मशहूर शायर थे। मुझे उनके दर्शन अक्सर तब होते थे, जब मैं अपने घर से मेरठ कॉलेज, वाया खै़रनगर बाजार पढ़ने जाया करता था। उसी इलाके के निवासी, हल्के-फुल्के सफेद दाढ़ी और थोड़ी-सी झुकी कमर वाले बूम साहब अपनी शायरी की पुस्तिका "चमारी नामा" हाथ में ऊपर को उठाकर गाते हुए 'चार चार आने' पुकारा करते थे, उसमें जमींदारों और उनके यहाँ काम करने वालियों की जीती-जागती तस्वीर, शायरी की मार्फत बखूबी पाठकों को दिखाई पड़ जाती थी। एक दिन उनके एक चेले ने पुकारा, "मियाँ बूम साहब, पाखाने में बैठे क्या कर्रिये हो?"

बूम साहब भीतर से ही बोले, "अमाँ तुम पूछ रिये हो कि क्या

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करिये हो और मेरी जान निकली जा रही है।''

''क्यूँ क्या हुआ? ज्यादा ही किनच रिये हो आज।'' पान-पीक भरे मुँह को ऊपर उठाते हुए उसने पूछा।

''हाँ मियाँ बड़ी देर हो गई खुशामद करते-करते—अबे निकल, बाहर को आ, डरता क्यूँ है? मैं क्या हौवा हूँ जो तुझे खा जाऊँगा?''

बूम साहब के विषय में मैंने अनेक किस्से सुने थे—उन्हें अक्सर मुशायरों में आमंत्रित नहीं किया जाता था, पर वे बिन बुलाए मेहमान की भाँति वहाँ पहुँच जाया करते थे, सुना था, एक बार अंग्रेजी राज में उन्हें जयपुर के अलबर्ट हॉल में होने वाले अखिल भारतीय मुशायरे में कदाचित् तत्कालीन गवर्नर साहब की इच्छानुसार आमंत्रित किया गया था, वहाँ उन्होंने कहा था, ''इज्जत मिली है आज हुजूर के हॉल में।''

बोला बजाय ठुंठ के अलबर्ट हॉल ये।'' बूम (उल्लू) उनका तख़ल्लुस था। उनकी दो पंक्तियाँ बड़ी प्रसिद्ध हैं—

''इन हसीनों ने उजाड़ी बस्तियों पर बस्तियाँ
बूम साला मुफ्त में बदनाम है।''

सोचता हूँ कि अच्छा हुआ बूम साहब, अल्लाह को प्यारे हो गए वरना 'चमारी नामा' की वस्तु और भाषा को लेकर आज उन्हें अपनी ज़मानत करा लेने के बावजूद भी सजा जरूर काटनी पड़ती, क्योंकि वे किसी से डरने वाले तो थे नहीं, जो मन में आता कहे बिना बाज नहीं आते थे।

क्या करूँ कलम पर जोर नहीं चला, मन मानी कर बैठी और कहाँ से कहाँ पहुँच गई। कलम पर कंट्रोल करना हर किसी के बस का भी तो नहीं। शौच-निवृत्ति की क्रिया मुझे वर्षा ऋतु में भी बहुत परेशान करती थी, कभी-कभी तो पाला-पड़े तालाब के पानी की सी पीड़ादायक हो जाती थी—

झमाझम बारिश, आकाश में बादलों की गर्जना, बीच-बीच में बिजली की कड़क और वही नेचर कॉल की घंटी बजना, वर्षा रुकने की इंतजार में या वर्षा के भय के कारण प्रेशर को रोकने की भरपूर कोशिश फेल होती नजर आती तो मैं बोरी के चोट बने शिरस्त्राण पर वर्षा-बाणों को झेलता, झटपट घर से बाहर निकला, बाहर निकलते ही गलियारे में बहती हुई नाली का कीचड़ युक्त काला, गाढ़ा-गाढ़ा पानी, मल और गोबर का पतला मिश्रण, पानी के साथ बहते तिनके, गन्ने के छिलके, पत्तियाँ,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घास-फूँस, घरों से निकलकर आती हुई गंदगी के कचरे युक्त प्रवाह से स्वयं को बचाते हुए दीवारों की ओर रेंगते हुए केंचुए, कानखजूरे के शिशुओं सी अनगिन गिजाइयाँ और लाल-लाल मखमली वीर बहूटियाँ, इन सभी को देखकर तब मन में एक उबकाई सी उभरने लगती थी जिसे देखकर मैं सिहर उठता था, तन-मन सब झंकृत सा हो उठता था। इन सभी से नंगे पैरों को बचाते हुए, आगे बढ़ता था, पैर आगे बढ़ाकर चलते समय ऐसा महसूस होता था जैसे कोई मिलिटरी सूबेदार अचानक बोल उठता है—सा...वधान! धीरे बढ़!" (यह मिलिटरी अफसर द्वारा सैनिक टुकड़ी को दिए गए—"अटैं...शन! स्लो मार्च" का अनुवाद है। कभी-कभी रात्रि में गार्ड ड्यूटी पर खड़ा हुआ भारतीय सैनिक आते हुए किसी व्यक्ति को देखकर जोर से चिल्लाता है—"हू कलंदर?" यह अंग्रेजी के "हू कम्स देयर" का अनुवाद है।)

और मैं सावधानीपूर्वक स्वयं को रपट पड़ने से बचाते हुए, "सँभल सँभल पग धरिए रे मनवा" गुनगुनाता-सा आगे बढ़ता था—भीतर से धक्का सा लगता, जल्दी चल, भाग नहीं तो यहीं तेरी इज्जत खराब कर दूँगा। दूसरी ओर रपट पड़ने के खतरे का निशान—दोनों में कशमश, धींगामुश्ती, द्वंद्व, खैर मनाते हुए, प्रेशर को जबरदस्ती रोकने से उत्पन्न आँखों, चेहरे से टपकती बेचैनी लिए, बाहर को निकल पड़ने को तैयार मल को जोर लगाकर ऊपर की ओर खींचते हुए, ज्यूँ-त्यूँ खेत में पहुँचता झट कुर्ते को ऊपर उठा कच्छे को नीचे सरकाते हुए, ठीक तरह नीचे शौचासन में बैठ भी नहीं पाया था कि बीच में ही बम का गोला सा फूट पड़ा और बैठते-बैठते पेट में बंद सारा कचरा निकल कर धरती पर जा पड़ा। मुझे लगा जैसे हाथ पर लगे ततैंये को फटाक से झटक दिया हो अथवा पिंजरे का मुँह खुलते ही चूहा भाग खड़ा हुआ हो। पिंडलियों पर मल के दो-चार छींटे गिर पड़ने के बावजूद मुझे परम सुखदाई शांति की अनुभूति हुई, उस शांति से वर्षाजन्य सारे कष्ट धुल गए, जैसे किसी बड़ी लकीर को छोटी करने के लिए, उसके बराबर उससे बड़ी एक और लकीर खींच दी गई हो। मैंने महसूसा जैसे यह सुख काव्यशास्त्र में वर्णित 'ब्रह्मानंद सहोदर' भले ही न हो, उसका पड़ौसी जरूर है।

हमारे घर के सामने, लगभग 12 फुट चौड़ा एक गलियारा था—कच्चा, लेकिन मिट्टी भली प्रकार दबी होने के कारण वह मजबूत था, रेतीला

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं था, उसके बीचोंबीच एक सार्वजनिक नाली बहती थी। दगड़े के दोनों ओर कच्चे पक्के मकान पंक्तिबद्ध थे। सामने वाले मकानों की पीठ पीछे 15 फुट चौड़ी एक गली थी, गली के दोनों ओर मकान बने थे जिनमें कोई दरवाजा न होने के कारण उस गली को महिला शौचालय का दर्जा प्राप्त था, महिलाएँ केवल वहीं मल विसर्जनार्थ आती थी और उस गली की दीवारों के सहारे-सहारे, आमने-सामने मुँह किए, पंक्तिबद्ध बैठ जाती थी, बीच में पर्याप्त जगह खाली रहती थी। उस गली को खाई कहते थे। शौचार्थ आने वाली स्त्री का धर्म था कि वह बराबर वाली किसी सखी सहेली से पूछ लिया करती थी—"अरी बाहर बैट्ठण चलै के?" और वे दो-दो, तीन-तीन की टोलियों में खाई में पहुँच, लहँगा ऊपर को उठाकर शौचासन में बैठ जाती थी और एक तीर से दो शिकार करती थी—नेचर कॉल का आज्ञा-पालन और पास-पड़ौस के किस्से-कहानियों से लेकर, खाने-पीने, ओढ़ने-पहनने तक, सास के आप्त वचनों से लेकर, पड़ौस की बड़ी-बूढ़ी के साथ बहू के लच्छनों तक का वाचन होता था, कल किसके यहाँ क्या कुछ बना था, क्या कुछ खाया-पीया गया था—इसका भी विस्तृत ब्यौरा प्रस्तुत किया जाता था, थोड़ी-थोड़ी देर में वे बाहर से गुजरते हुए ग्रामीण हाईवे यानी दगड़े से गुजरने वाले किसी आदमी को देख लहँगा नीचे डालती हुई खड़ी हो जाती थी, फिर बैठ जाती थी, कई बार तो उन्हें लगातार आने जानेवालों के कारण उट्ठक-बैठक सी करनी पड़ती थी, कभी-कभी न उठ पाने की लाचारी में, राजस्थानी कहावत 'आँख्याँ माह कंधा देक्खण वाला अंधा" का पालन करती हुई सिर झुकाए बैठी रहती थी और फारिग होकर, ऊपर को उठी, लहँगा नीचे को डाला, अपने पदानुसार घूँघट निकाला या निर्घूंघट घर लौट जाती थीं।

कदाचित् आदमियों को देख उट्ठक-बैठक के कष्ट से बचे रहने के कारण महिलाएँ अंधेरे-अंधेरे खाई में पहुँचनी शुरू हो जाती थी तो उनके साथ ही सूअर, सूअरी अपने छोटे-छोटे बच्चों सहित वहाँ पहुँच जाते थे। औरतें टट्टी फिरती जाती थी और सूअर 'चपड़-चपड़' करते अपना नाश्ता-पानी शुरू कर देते थे, इधर महिला ने धड़ाम चौथ मारा, उधर नदीदे से सूअर ने, 'फिर मिले न मिले' भाव से उस पर झपट्टा मारा। सूअर के उतावलेपन के कारण, बैठी हुई स्त्री को भय के कारण लहँगा ऊपर को पकड़े-पकड़े तुरंत उठकर एक ओर को सरकना पड़ता था। इस स्मरण के

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साथ ही मेरे समक्ष प्रकृतिलीला का माहात्म्य साकार हो उठता है—अपने बंदे को भयंकर दुर्गंध से बचाने के लिए उसने शूकर रूप में सैनेटरी वर्करों की एक सेना की सृष्टि रच डाली—'वाह रे स्रष्टा कैसा मेहरबान है तू?'

दिन चढ़ते-चढ़ते औरतों का खाई में आना बंद सा हो जाता था, फलतः शूकर-सेना का कोई एकाध सैनिक ही दिखाई पड़ता था, तब खाई देखने में ऐसी लगती थी जैसे खाना खाकर उठ जाने वाली पंगत द्वारा जमीन पर छोड़ी हुई मक्खी भिनकती पत्तलें, जिन पर सब्जी आदि की जूठन लगी रहती थी। सूअरों ने सार-सार ग्रहण कर लिया और मिट्टी मुँह में न चली जाए—थोथा छोड़ दिया। 'मालिक' ने जमीन को चमाचम करने का आदेश नहीं दिया था। उस पर भिनकती मक्खियों को देखकर लगता था कि इन्हें सूअरों का उच्छिष्ट खाने से भी परहेज नहीं—मुझे तब शूकर उच्च वर्गीय और मक्खियाँ निम्नवर्गीय सी नजर आती थी। यहीं मेरे मन में एक जिज्ञासा ने जन्म लिया—लज्जा की प्रतिकृति औरतजात किस प्रकार नंगी होकर साथ-साथ बातें करती-करती शौच कर लेती हैं जबकि 'नंगा' आदमी इतना बेशर्म नहीं हो पाता? फिर 'शेम-शेम' अधिकतर महिलाओं पर ही क्यों लागू होता है? कोई उत्तर नहीं मिलता, सोचता हूँ संतुलन कायम रखने के लिए ही प्रकृति ने इसकी रचना की है।

बालपन की मेरी ये स्मृतियाँ मुझे आज भी पुलकित करती हैं। मेरे इस विचार को आप एक सिरे से खारिज कर सकते हैं—ऐसी घिनौनी बातों से पुलकित होना? कुछ जँचा नहीं। लेकिन मुझे अच्छा लगता है जब वे, मेरे समक्ष उस सत्य को जाग्रत कर देती है, जो आज मेरे लिए विलुप्त है, आज बेपैंदी के लोटे से न कमीज प्रैस करना दिखाई पड़ता है न ही जुओं का वह आतंक, न बहती नाक पोंछते रहने से कमीज के कफों की शीशे जैसी चमक, न शौच निवृत्त-कला की पुनरुक्ति—अक्ल मापने का इंचीटेप, न पीली मिट्टी से हस्तप्रक्षालन जिसे अब टायलेट पेपर, साबुन आदि ने तिरस्कृत कर दिया है, ना ही तेज गर्मी में भी सिहरन पैदा करने वाला जोहड़ का पाला पड़ा पानी-स्मरण, और न ही वर्षा में बोरी के चोट तले सँभल-सँभल पग धर कर चलना, सब कुछ विलुप्त होते हुए भी मेरे नेत्रों के समक्ष घूम रहा है।

फिर ऐसी स्मृतियों को क्यूँ भूलूँ?

●

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्यूँ भूलूँ?

(राधा और फैफो)

'विस्मृति आ अवसाद घेर ले—पता नहीं प्रसाद जी ने विस्मृति को क्यूँ निमंत्रित किया, अवसाद से क्यूँ रिक्वेस्ट की थी कि 'प्लीज कम इन?' क्या लाभ हुआ? खुद तो अकाल-काल-कवलित हो गए और काव्यश्री पर एक सफेद सी चादर डाल गए। कदाचित् इसीलिए जीवन-मरण संबंधी व्याख्याएँ मेरी अपनी अलग हैं। अभी टी.वी. पर समाचार देखा, सुना कि चंडीगढ़ में एक संभ्रांत कन्या ने दो सगे भाइयों को अपनी कार से कुचल कर मार दिया। जिसने देखा, सुना, उसी के मुँह से च् च् च् च् एक हाय-सी निकली—'कितने प्यारे प्यारे जवान लड़के थे, मर गए। मेरे मन ने कहा, "ये कहाँ मर गए, ये तो छूट गए, पता नहीं कहाँ-कहाँ भटकते, क्या-क्या पापड़ बेलते जीवन भर? पर कोई मरा तो है? हाँ मरे हैं बल्कि जीते जी मरे हैं, इनके माँ-बाप जो रोते-रोते यही दुआ कर रहे होंगे कि भगवान हमें उठा ले, उसके बदले हमारे दोनों लालों को जिंदगी वख्श दे, इनकी बहिन मरी होगी जिसके दो-दो भाई विधाता ने एक झटके में ही हलाल कर दिए।

मेरा मानना है कि मरता वह नहीं जिसका अंतिम संस्कार होता है, मरता है वह जो उससे संबद्ध है—कोई क्षण दो क्षण को मरता है, कोई घंटे, दो घंटे को मरता है, कोई तेरह दिन को मरता है और कोई आजीवन तिल-तिलकर मरता रहता है। ऐसे तिल-तिलकर मरने वाले को, अपनी तत्संबंधी स्मृतियों के सहारे अपनी जीवन-नौका को अंतिम साँस तक खेना पड़ता है। वह कोशिश करे तो वह अपनी मधुर स्मृतियों के सहारे तिल-तिल कर मरने की अपेक्षा, हँसी-खुशी जीवन गुजार सकता है, वह

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऊर्जस्वित भी रहेगा और उसकी जीवनावधि भी विस्तृत हो जाएगी।

यही कारण है कि कटु स्मृतियों को मैं अपने घर से धक्के मार कर बाहर निकाल फेंकता हूँ और मधुर स्मृतियों को गले लगा लेता हूँ। कदाचित् यही कारण है कि मुझे कभी नींद न आने की शिकायत नहीं हुई, खुर्राटे मारते हुए ऐसे लंबी तानकर सोता हूँ कि पास सोने वाला भी परेशान हो उठता है।

स्मृतियों की सबसे बड़ी विशेषता यह होती है कि वे कभी बासी नहीं होती, मृत्युपर्यंत तरोताज़ा रहती हैं। आप बूढ़े हो जाएंगे पर स्मृतियाँ वैसी की वैसी आत्मरूपा रहेगी—अ़काट्य अदाह्य, अशोष्य अभेद्य और अछेद्य। कोई भी बढ़िया से बढ़िया फिल्म देख लीजिए, उत्तम से उत्तम उपन्यास, काव्य, कहानी आदि कुछ भी पढ़ लीजिए, फिर से देखने पढ़ने की इच्छा नहीं होती, बहुत हुआ तो, बहुत मनभाई तो, दो-तीन बार देख लिया, लेकिन स्मृतियों को तो एक बार देखो, बार-बार देखो, हजार बार देखो, हर बार यही इच्छा होगी—देखने की चीज है यही। सैकड़ों, हजारों बार देखी स्मृति, हर बार सद्यःस्नाता सी, बिना किसी मेकअप, उसी रूप में हमें पुलकित करती है, हँसाती है, रुलाती है। कुछ लोगों की आदत होती है कि वे घर-फोड़नी स्मृतियों का आह्वान जान पूछ कर करते हैं, सारे जीवन कुढ़-कुढ़ कर मर जाते हैं, पर मैं उनमें से नहीं हूँ—यावत् जीवेत् सुखं जीवेत्, लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि मैं 'ऋणं कृत्वा घृतं पिवेत्' में यकीन करता हूँ, उससे मैं डरता हूँ।

स्मृतियों का एक भंडार मेरे मानस में संगृहीत है। सोचता हूँ, ये स्मृतियाँ जब मुझे पुलकित करती हैं तो सुनने वालों को भी पुलकित कर सकती हैं, माना कि जरूरी नहीं, फिर भी सुनाने में क्या हर्ज है। उनका कोई क्रम नहीं है, कभी बालपन की स्मृति आ जाती है, कभी युवावस्था की और कभी वृद्धावस्था की। आज प्रातः ही एक महिला को देखा, वह अपने पुत्र को लिटाकर धूप सेक रही थी, शिशु बिल्कुल नंगा था। खट से मेरे बालपन की एक स्मृति आ धमकी और एक छोटे बच्चे की भाँति मेरे गले में गलबहियाँ डाल दी और मेरी पीठ पर चढ़ बैठी, मेरे सिर से अपना सिर मिलाती हुई मेरे कंधों पर झूल गई—

लगभग 82 वर्ष पूर्व की बात है। मेरा, गाँव का घर, बाहर से घर में प्रवेश करने के लिए, जनाना दरवाजा, उससे थोड़ा आगे मर्दाना

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दरवाजा, घर का हो या बाहर का कोई आदमी जनाने दरवाजे से घर में प्रवेश नहीं करता था, इसी प्रकार कोई भी स्त्री मर्दाने दरवाजे से अन्दर नहीं आती थी–घर स्पष्टतः दो हिस्सों में बँटा हुआ था। मुझे स्मरण नहीं है कि दिन के समय, किसी भी पुरुष ने जनाने हिस्से में आराम किया हो या स्त्री ने मर्दाने में।

गर्मियों के दिन, प्रातःकाल कोई आठ बजे का समय रहा होगा। मैं नंगधड़ंग, एकदम दिगम्बर, वस्त्र के नाम पर कमर में बँधी हुई एक तगड़ी जिस पर लाल रंग का एक फुँदना लटक रहा था–पहने खड़ा था। मेरे एक हाथ में आधी रोटी और दूसरे में गुड़ की डली थी। दरवाजे की कुंडी खड़की–"कौण है?" माँ ने जोर से पूछा। "मैं हूँ दाद्दी राधा कुम्हारी।" जवाब आया। माँ गई और दरवाजा खोला–"अरी राधा, आज तड़केई तड़के?" "हाँ, दाद्दी।" हाँफते हुए राधा बोली।

राधा जवानी आने से पूर्व एक बेटे को जन्म देने के बाद ही विधवा हो गई थी। गाँव के सभी घरों में तीज-त्यौहारों, विवाह-शादियों में पत्तल, शकोरे, कुल्हड़, अली आदि राधा के घर से ही आया करते थे, पूरे गाँव में बस यही एक घर कुम्हार का घर था। मैंने बाद में, बड़ा होने पर उस दिन इन कच्चे बर्तनों को एक नया नाम–'इंडियन क्रॉकरी' दे दिया था जिस दिन मेरे अग्रज ने एक घटना सुनाई–"एक अंग्रेज किसी हिन्दुस्तानी की बारात में गया, उसे जमीन पर दूसरे बरातियों के साथ, चौहरा किए हुए एक पाल पर, एक पंक्ति में बिठाया। एक व्यक्ति हरेक के सामने पत्तल रखता चला गया, दूसरा कुल्हड़, तीसरा अली, शकोरा वगैरह रखता चला गया। बाद में उनमें पानी, रायता, सब्जी, पूरी, कचौरी, लड्डू आदि रखे गए। अंग्रेज नाक-भौं सिकोड़ता धीरे से बोला, "हाऊ चीप, दिस इंडियन क्रॉकरी?" खाना खा चुकने के बाद उसने देखा, वे सभी पत्तल आदि उठाकर दरवाजे के बाहर फेंक दिए गए। अंग्रेज की आँखें फटी की फटी रह गई–"ओह! दे यूज़ ओनली वंस?" जैसे-जैसे मैं आजकल की संभ्रांत शादियों में इस्तेमाल की जाने वाली क्रॉकरी को देखता जाता हूँ, वैसे-वैसे इंडियन क्रॉकरी की शुचिता-महत्ता मेरे मन में बढ़ती जा रही है। इस आधुनिक क्रॉकरी में खाते हुए मुझे घिन आती है। मैंने एक शादी में देखा था कि मंडप के पिछले हिस्से में खाना बन रहा था, वहीं पास में टिन के एक बड़े से टब में पानी भरा हुआ था और बेयरा एक-एक झूठी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्लेट उठाता गया, उसे पानी में डुबोकर, दूसरे हाथ में पकड़े एक कपड़े के टुकड़े को फटाफट प्लेट पर फिराते हुए उसे पानी में डुबोता और एक ओर को रखता जाता था। काँच के गिलास, प्लेटें धोते-धोते टब का पानी, उत्तरोत्तर गाढ़ा और चिपचिपा बनता जा रहा था। मक्खियाँ भिनक रही थी, उसने अपनी बाजू से हाथ पोंछा और एक ओर मुँह करके, जोर लगाकर अपनी नाक सिनकी। जोर से निकले पाद की ध्वनि जैसी गुड़गुड़ाती सी विस्फोटक ध्वनि के साथ रैंट का एक चमचमाता कंचा सा उसकी तर्जनी और अँगूठे के बीच झूल गया। उसने जोर से जमीन पर हाथ झटका, मानों ततैंया ने काट खाया हो और कंचा नीचे गिर गया और रैंट लगी अँगुलियों से फिर प्लेटें धोने में लग गया। साथ खड़ा एक और लड़का धुली प्लेटें पोंछे से पोंछ रहा था, थोड़ी-थोड़ी देर बाद वह पोंछे को निचोड़ता जाता था और प्लेटें पोंछता जाता था, चिकनाई के कारण, निचोड़ते वक्त पोंछा उसके हाथ से रपट जाता था और वह भली प्रकार निचुड़ नहीं रहा था। देखकर मुझे उबकाई आ गई, सोचा हम इस क्रॉकरी में चटकारे ले लेकर खाते हैं? यही है हमारी आधुनिकता? कई बार ऐसा हुआ कि मजबूरन किसी विवाह शादी में इस मॉडर्न क्रॉकरी में खाते समय वह सीन याद आ गया! तो मुझे खाना भीतर धकेलना दुष्कर हो गया और प्लेट रखकर भूखे ही आना पड़ा। खैर,

कलम पर बस नहीं चला, वह माँ के दूध के भूखे बछड़े की भाँति, जेवड़ा तुड़ाकर 82 वर्ष पूर्व की घटना से आज, वर्तमान में घुसपैठ कर गई। हाँ तो बात मैं राधा कुम्हारी की कर रहा था। राधा आई, मुँह में एक भी दाँत नहीं, जब वह मुँह खोलकर हँसती थी तो उसका मुँह चूहे के एक अँधेरे भट के समान दिखाई पड़ता था, लाठी के सहारे ठक्-ठक् करती चल रही थी, लहँगा पहने थी जिसका वजन लगभग राधा के वजन के बराबर था। उसकी झुकी कमर 90^0 का एंगिल बना रही थी। माँ की ओर ऊपर को गर्दन उठाते हुए राधा बोली, "पाँया पड़ूँ दादूदी।"

माँ के मुँह से "बूड सुहा"—ही निकला था कि माँ ने स्वयं को ऐसे सँभाला जैसे रपट पड़ने पर गिरता-गिरता आदमी स्वयं को सँभाल लेता है—"मेरा मतलब है, सुखी रह राधा।" कहते हुए माँ ने अपनी गलती सुधारी। क्योंकि राधा तो विधवा थी और विधवा को बूड़ 'सुहागन' का आशीर्वाद कैसे दिया जा सकता है! माँ ने राधा को अँगुली से इशारा

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया, "आ बैठ।" "सोच्चा था आज दाद्दी के पोत्ते नै देखाऊँ, कई महिन्ने का हो ग्या है, मेरा आणाई नईं हुया। इब चल्या भी तो नईं जात्ता दाद्दी।" कहकर राधा आँगन में दीवार के सहारे, छाया में एक ओर को 'हे राम'! कहते बैठ गई। माँ ने उसे एक पीढा दिया, "ले राधा तळेई क्यूँ बैठगी, इसपै बैज्जा।"

"इसतै भी बड़ी कोई चीज होवै के?" कहते हुए राधा ने अपने सीधे हाथ की अँगुलियाँ धरती से छुवाई और उन्हें अपने माथे तक ले जाकर चुचकारते हुए धरती माँ को प्रणाम कर पीढा पकड़ा और उस पर बैठ गई।

"और के हाल-चाल है राधा, बाळ-बच्चे तो सब ठीक हैं?" माँ ने पूछा।

"सब थारी किरपा है दाद्दी...आजकाल बहू बेट्टे नै घणी मेनत करणी पड़री है, आवा तैयार करण में लगरे हैं, बारिस आण तै पहलै आवा पक जा तो फेर खतरा नईं रहत्ता, जान जोक्खंम मै अटकी रहबै, पिछली साल तनै पताई है दाद्दी के गैर टैम बारिस नै तो म्हारा मटिया मेट कर दिया था, बड़े लोग्गा नै म्हारी तकलीफ तो दिखाई पड़े नईं, टैम पै वास्सण न पोंचे तो सारा गुस्सा म्हारे पैई तारैं, इंदर माराज नै कोई जाकै नईं कहत्ता के तनै गरीब कुम्हार का आवा क्यूँ डुबा दिया? इस वास्ते भी दाद्दी घर तै लिकड़नाई नईं हुया?" कहकर राधा चुप हो गई।

माँ ने पूछा, "राधा पाणी पीबैगी?"

"ना दाद्दी तड़की तड़की पिस ना लग री, माड़ी सी छाय हो तो दे दे।"

माँ ने एक गिलास में मट्ठा भरा और राधा को गिलास पकड़ा दिया, साथ में गुड़ की एक डली भी पकड़ा दी। राधा बोली, "मुँह में दाँत तो हैई नईं क्युँक्कर खाऊँगी?" कहकर राधा ने मट्ठे का गिलास जमीन पर रखा और गुड़ की डली के छोटे-छोटे टुकड़े करने की कोशिश की। गुड़ सख्त था। राधा बोली, "दाद्दी इसपै बाट मारकै इन्नै भुरभुरा सा कर दे।"

माँ ने गुड़ की डली पकड़ी और सिल पर रखकर उसे सिलबट्टे से कूट-कूट कर बारीक कर दिया। "इसतै तो सक्कर ही दे देत्ती मनै ध्यान नईं रह्या", कहते हुए माँ राधा के पास पहुँची। राधा ने अपनी हथेली

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फैलाई और माँ ने राधा की हथेली पर अपनी मुट्ठी में बंद पिसे हुए गुड़ को नीचे की ओर झुकते हुए राधा की हथेली पर डाल दिया और बाएँ हाथ की हथेली से, दाएँ हाथ में लगे गुड़ के कणों को झाड़ा।

राधा धीरे-धीरे गुड़ की फंकी मारती रही और मट्ठे की घूँट भरती रही। पूरा गिलास मट्ठा पीने के बाद राधा ने अपने ओन्ने के पल्ले से मुँह पोंछा और 'ओम्' की ध्वनि के साथ एक डकार ली, ''तेरे बच्चे जीवैं दाद्दी'' का आशीर्वाद दिया।

''छाय और ल्याऊँ राधा?''

''बस दाद्दी, सेळक पड़गी।'' कहकर राधा ज्यूँ-त्यूँ करके उठी और आँगन के कोने में बर्तन माँजने की जगह जाकर, वहाँ रखे जूने से गिलास माँजा और बोली, ''दाद्दी, माड़ा-सा पाणी गेर दिए। माँ ने लोटा उठाया और राधा के मँजे हुए गिलास पर पानी की धार डाली, राधा ने गिलास धोकर एक ओर रख दिया।

माँ बोली, ''राधा, छाय मँगवा लिया कर।''

''कहाँ दाद्दी, गाम की पछवाँ में तेरा घर है और मैं गाम की परवा में रहूँ, उतनी दूर कोण आवै?...ल्या दाद्दी लाल्ला नै दिखा।'

माँ, चार महीने के नंगे मेरे भतीजे यानी अपने पोते को गोद में लेकर आई और ''ले राधा,'' कहते हुए उसे राधा की गोद में दे दिया। राधा ने अपने दोनों घुटने मोड़े, शिशु को उसके दोनों कंधों से पकड़कर ऊपर उठाया और अपने घुटनों पर बिठा लिया। राधा बोली, ''दाद्दी, ल्या इसकी नजर तार दूँ, बड़ा सोहणा है।'' और उसे खिलाने लगी। उसने अपने पोपले मुँह से शिशु पर प्यार लुटाना शुरू किया—आ, आ...अले, अले कहती हुई, आगे-पीछे झुकती हुई उसे झुलाने लगी और फिर लोरी गुनगुनाने लगी—'चंदा माम्मा दूल के, पुड़े पकाए बूल के, आप खाएं,' ही बोल पाई थी कि शिशु ने एक जोर की जलधारा ऐसी मारी कि सीधे राधा के मुँह में जाकर पड़ी।

''अरे मरे यू के कर दिया? ले पकड़ दाद्दी, इसनै तो मैं पवित्तर कर दी'' एक ओर को थूकते हुए मुस्कराती राधा ने शिशु को हाथों से ऊपर को उठाया और माँ की ओर बढ़ाया।

माँ हँस पड़ी और मैं, था तो दो ढाई साल का, खिलखिलाकर हँस पड़ा। न तो राधा ने अपने पवित्रीकरण पर कोई टिप्पणी की और न ही

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माँ ने, पोते को 'मरा' कहने का कोई बुरा माना। आज सोचता हूँ कि उस गाली में भी राधा का प्यार भरा आशीर्वाद छिपा था वरना अपने नन्हें पोते को 'मरा' की गाली कौन स्त्री सहन करती है।

मेरे नवजात भतीजे से प्रसाद लेकर, राधा उसे आशीष देती बोली, "यू तो परमातमा का रूप है, इसतै कोई इंसान भ्रिस्ट होवै?...अच्छा चलूँ दाद्दी?"

"ठीक है, आ जाय कर कदी-कदी राधा।" राधा ने बायाँ हाथ अपने घुटने पर रखा, दायाँ जमीन पर टिका कर, पूरा जोर लगाते हुए, स्वयं को खड़ा किया जैसे वह एक भारी गठरी को किनचती सी ऊपर उठा रही हो और दीवार के सहारे रखी अपनी लठिया को उठाकर ठक्-ठक् करती बाहर निकली, "दरवज्जा भेड़ ले दाद्दी।" कहकर चली गई।

माँ ऊँची आवाज में बोली, "अरै रोट्टी खा ले विद्या और मुँह धो ले देख माक्खी भिणक रईं हैं।" मैंने हाथ में बची हुई रोटी और गुड़ की डली, झूठी जाली में रख दी। हमारी रसोई के दरवाजे के दोनों ओर दो जालियाँ—एक बाईं ओर और दूसरी दाईं ओर बनी हुई थी, बाईं जाली को झूठी जाली और दाईं को सच्ची जाली कहा करते थे। ईंटों की दीवार चिनते-चिनते, एक-एक ईंट के झरोखे छोड़ते हुए जालियाँ बनाई गई थीं। इन जालियों से रसोई में रोशनी, हवा पहुँचती थी तथा उनमें एक में झूठी, दूसरी में सच्ची चीजें गुड़ की डली आदि रख दी जाती थी। मुझे जब भी भूख लगती मैं माँ से रोटी माँग लिया करता था, गुड़ झूठी जाली में से उठा लिया करता था, दाल सब्जी कम ही खाता था, गुड़ मुझे अच्छा लगता था। चाय आदि मैं अधिक चीनी लेने की मेरी आदत से सभी घर वाले आज तक परेशान हैं—डरते हैं कहीं डायबिटीज न हो जाए। मैं कहता हूँ, 82 वर्षों से गुड़ खाता चला आ रहा हूँ अब तक नहीं हुई तो अब क्या होगी और उसके भय से मैं गुड़ खाना तो नहीं छोड़ सकता।

माँ ने लोटे में रखे पानी में हाथ भिगोकर मेरे मुँह पर फेरा और अपने ओन्ने के पल्लू से मेरे मुँह को पोंछ दिया। हमारे आँगन के दक्षिण पूर्व कोने में, एक मोरी थी जिसका निकास, बराबर वाले घर के बीचोंबीच बनी नाली से होता हुआ बाहर दगड़े की नाली में होता था। घर के जनाने हिस्से के पानी का निकास केवल उसी नाली से होता था, जो हमेशा झगड़े की जड़ बना रहता था। इसके अतिरिक्त घर में कोई और नाली नहीं थी।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पिताजी के आदेशानुसार वहाँ केवल नहाना, कपड़े, बर्तन धोना आदि ही हुआ करता था। वहाँ, किसी बच्चे की टट्टी आदि साफ करने के काम का तो प्रश्न ही नहीं उठता था। फिर भी निरंतर सफाई न होने से नाली में बदबू उठना लाज़मी था। उस नाली की सफाई बराबर वाले घर के मालिक भूरे को करनी पड़ती थी। अपने घर से गुजरती हुई उस नाली की सफाई करते-करते वे बड़बड़ाते रहते थे, लेकिन उनकी मजबूरी थी क्योंकि कानूनन एक नाली जहाँ को एक बार निकल गई तो सदा के लिए निकल गई, फिर उसे बंद नहीं किया जा सकता था। भूरे रिश्ते में मेरे भैया लगते थे। अतः हम उन्हें भूरे भैया कहा करते थे, हमने कभी उन्हें हँसते-मुस्कराते नहीं देखा था। वे विधुर थे। उनके एक पुत्री थी ज़िसका विवाह हो चुका था और एक पुत्र था, जयभगवान जिसने मेरे जन्म के पूर्व ही संन्यास ले लिया था और उनका नया नाम हो गया था, दंडी स्वामी आत्माराम। स्वामी आत्माराम कभी-कभी गाँव आ जाया करते थे तो हमारे मंदिर में ही ठहरते थे और हमारे घर ही भिक्षा ग्रहण किया करते थे। रिश्ते में तो पिताजी, स्वामीजी के बाबा लगते थे पर पिताजी उनहें हाथ जोड़कर 'ओम् नमो नारायण' कहते थे, नमस्ते, प्रणाम, जयरामजी आदि नहीं। वृद्धावस्था में संग्रहणी रोग से ग्रस्त हो जाने के कारण स्वामी आत्माराम ने दंड का त्याग कर दिया था, पर संन्यासी बने रहे। पता नहीं, उन्होंने संन्यास अपनी अंतःप्रेरणा से लिया था अथवा अपने पिता भूरे भैया की शुष्कता के कारण। भूरे भैया की आदत से सभी परिचित थे, इसलिए कभी किसी के साथ उनकी तू-तू मैं-मैं नहीं हुई, न किसी से बोल न चाल, अपने आप में ही मग्न रहा करते थे। जब कभी उनकी पुत्री उनसे मिलने आ जाती थी, वे उसे एक-दो दिन से ज्यादा बर्दाश्त नहीं करते थे, कह देते थे, ''बस बोब्बो भरतो, इब तू अपणे घर नै जा।'' और वह बिचारी उल्टे पाँव लौट जाती थी। भूरे भैया हमें कुछ भी कह लिया करते थे पर नाली को लेकर उन्होंने कभी माँ पिताजी की ओर आँख उठाकर नहीं देखा। कभी-कभी पिताजी के आदेशानुसार हमें भूरे भैया के घर जाकर उस नाली की सफाई करनी पड़ती थी।

माँ ने मेरा मुँह धो-पोंछकर ऐसा चमका दिया था कि उसकी चकाचौंध से मक्खियों ने अपने हथियार डाल दिए थे। इतने में ही फैफो जाटनी आ धमकी। कदाचित् फैफो ही उसका असली नाम था, पता

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं। हो सकता है वह इतनी गंदी रहती थी कि औरतों ने नाक-भौं सिकोड़ते हुए उसे फैफो नाम से अलंकृत किया हो...जो भी हो वह फैफो ही थी। उसके आधे कपड़े लहँगा, ओन्ना, कमीज भीगे हुए थे। वह हमारे कुएँ से पानी भरने आई थी। कुआँ मर्दाने हिस्से में मंदिर के पास था। मुझे याद नहीं, पूरे गाँव में किसी और के घर में कुआँ बना था। केवल मुखिया के पक्के दुमंजिले मकान के भीतर कुआँ था, जो उनका निजी था। बाहर के किसी भी व्यक्ति की एंट्री निषिद्ध थी। हमारा कुआँ सार्वजनिक था, लगभग आधे गाँव की स्त्रियाँ, लड़कियाँ पुरुष वहीं से पानी भरते थे, प्रातः से संध्या तक अच्छी-खासी चहल-पहल रहती थी, स्त्रियों के आपसी वार्तालाप से पूरे गाँव की, ए टु ज़ेड, खबरें प्रसारित सी होती रहती थी।

फैफो पानी भरने आई थी, पानी ढोते-ढोते उसके कपड़े भीग गए थे। अपना जल भरा घड़ा कुएँ पर ही छोड़, फैफो भीतर माँ के पास आई थी—"पायाँ पड़ूँ दाद्दी।" कहकर फैफो माँ के सामने झुकी और दोनों मुट्ठियों से माँ की पिंडलियों को ऊपर से नीचे, नीचे से ऊपर की ओर जोर-जोर से दबाने लगी। माँ के मुँह से तुरंत ही आशीष फूट पड़ा—हिसाब बराबर। आज सोचता हूँ कि माँ कभी थकती नहीं थी। इसका कारण कदाचित् यही था कि प्रातः से संध्या तक माँ के पैर गाँव की सभी औरतों से दबते रहते थे और सोते समय बहुएँ, पहले उनकी कमर-पैर दबाती थी, फिर सोने जाती थी, बहुएँ माँ को नहलाया करती थी, रगड़-रगड़ कर माँ की कमर मला करती थी।

"जीती रह, बूड़ सुहागन, दुद्धो नहाओ पुत्तो फलो।" माँ ने आशीष दिया।

"बस दाद्दी, मुझतै यूई काम करवात्ती रहैगी, ग्यारह-ग्यारह की पलटण तो तैयार कर दी, मेरे तो हाड़-गोड़ टूट ग्ये इस कुतरैड़ के रोट थेपते-थेपते, इब "पुत्तों फळो" का असीस रहण दे, इब आराम करण दे।" कहकर फैफो मुस्कराई।

"यू बात तो ठीक है फैफो, ज्यादा कुणबा सदा दुखी, थोड़ा कुणबा सदा सुखी।" मुझे लगता है किसी न किसी रूप में 'परिवार नियोजन' की चेतना थी जरूर जनमानस में।

"आज तो फैफो कई दिनाँ मैं आई!" माँ ने कहा।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"के करूँ दाद्दी, तेरे पूत न भी देक्खूँ, उसकी कुतरैड़ ने भी देक्खूँ, खेत क्यार का भी काम करूँ, के के करूँ, फुरसत ही नईं मिलती!... दाद्दी मेरा छोट्टा बलमा कहाँ है, दिखाई नहीं पड्या?"

"उप्पर छत पै खेलरा होगा?" कहकर माँ ने आवाज लगाई, "अरै बिद्या, यहाँ तळे नै आजा, वहाँ धूप में के कर्रा है?" सुनकर मैं जीने से नीचे उतरा। देखते ही फैफो बोली, "आजा मेरे छोट्टे बलमा।" और मेरी ओर बाँहें फैलाई। माँ मुस्कराते हुए कुछ रोष में बोली, "कै भोंक रई है फैफो?"

"यू तेरा बेट्टा नईं दाद्दी?"

"फेर?"

"फेर यू मेरा देवर हुया के नईं? देवर छोट्टा बलमा ई तो होवै।" कहकर फैफो फिर मुस्कराई। फैफो इधर-उधर का रोना रोती रही, आस-पड़ौस की औरतों की बुराई-भलाई करती रही। मैं खड़ा-खड़ा सुनता रहा, भले ही सारी बातों के अर्थ मेरे पल्ले नहीं पड़ रहे थे।

"अरै, आ रे बिद्दा, तनै एक चीज़ दिखाऊँ।" कहकर फैफो ने अपनी दाई हथेली मेरी ओर मोड़ी, अँगुलियों को अपनी ओर मोड़ते हुए दो-तीन झटके से दिए और गर्दन नीचे की ओर करते हुए मुझे आँखों से अपने पास बुलाया मैं फैफो के पास पहुँचा, वह बोली, "आ तनै एक चीज दिखाऊँ, देक्खैगा?"

मेरे 'दिखा' कहते ही फैफो ने झट से अपना लहँगा ऊपर को उठाया और मेरे सिर पर डाल दिया, मुझे आगे को खींचते हुए अपनी टाँगों से चिपका-सा लिया। मेरा सिर मुश्किल से उसकी जंघाओं तक पहुँचा था, मुझे माथे पर उसके बालों की चुभन सी महसूस हुई और मैं अँगुलियों से उनसे खिलवाड़-सी करने लगा। मुस्कराती हुई माँ उस पर झपटी "फैफो राँड के कर्री है? सरम नईं आत्ती?" कहकर फैफो की पीठ पर एक धौल जमाई।

"इसमैं सरम की के बात है दाद्दी, यू, यईं तै ना लिकड्या था?" कहकर फैफो हँस पड़ी। महीने में एकाध बार इस कांड की पुनरावृत्ति फैफो कर दिया करती थी। मैं बड़ा होकर, मेरठ पढ़ने चला गया था और जब भी गाँव जाता फैफो को देखते ही मैं उससे नजर बचाने लग जाता था, उसे देखकर मैं झेंप जाया करता था लेकिन फैफो मुझे नजर बचाने

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का मौका कभी नहीं देती थी, मुझे लगता था जैसे फैफो मेरे मुँह को हथेलियों से अपनी ओर मोड़ते हुए हँसती हुई कहती है, "अरे बिद्दा देखैगा?" मेरी शादी हो गई थी, पत्नी गाँव गई थी तो ऐसा कैसे हो सकता था कि फैफो उसे देखने न आती? मुझे देखकर फैफो बोली, "क्यूँ रे बिद्दा भुसन। कह दयूँ इसके सामी, खोल द्यूँ तेरी पोल के तू कहया करै था ना, अरी दिखा दे, बोल देक्खैगा? दिखाऊँ इसी के सामी?" पत्नी की ओर इशारा करते हुए बोली।

"तू नहीं सुधरेगी फैफो!" मेरे मुँह से मुस्कराहट के साथ निकला। फैफो माँ से बोली, "तेरी बहू तो भोत सोणी है, दाद्दी, यू तो मेरे तै भी सोहणी लिकड़ी, हैं ना दाद्दी?" माँ ने मुस्कराते हुए कहा था, "तेरे तै सुंदर कोण हो सकै फैफो, तू भी भोत सोहणी है।" आज सोचता हूँ, फैफो ऊपर से भले ही बदसूरत रही हो, पर भीतर से ऐसा सौंदर्य कहाँ देखने को मिलता है—निश्छल, उन्मुक्त, समर्पित, हर हाल में हर समय हर्षित, खिली, खिली।

आज, राधा कुम्हारी, भूरे भैया, फैफो जाटनी, मेरा घर, मेरा कुआँ, कुएँ पर पानी भरती स्त्रियों की हलचल, राधा को पवित्र करने वाला मेरा चार मास का भतीजा जो जे-6, नवीन शाहदरा निवासी डॉ. सुरेन्द्र मोहन भारद्वाज बना था, जिसे दिवंगत हुए भी कई वर्ष बीत गए हैं, सभी दिवंगत हो चुके हैं लेकिन उसका चार मास का किलकारी भरता रूप आज भी मेरे मानस पर तैर रहा है। ये सभी आज भी मेरे भीतर उसी रूप में चलते-फिरते विद्यमान हैं—राधा कुम्हारी की इंडियन क्रॉकरी, उसका पोपला मुँह, कुएँ पर सारे दिन की हलचल और फैफो का 'देक्खैगा?' आज भी मुझे उसी परिवेश में उसी देशकाल में खींच ले जाते हैं और मेरे भीतर एक नवस्फूर्ति का संचार कर रहे हैं। क्या ये सब भूलने की चीजे हैं? इन्हें क्यूँ भूलूँ?

●

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्यूँ भूलूँ?

(माँ का गणित और कुलदेवता)

मेरी माँ बिल्कुल अनपढ़ थी, एकदम अँगूठा छाप। माँ, छोटी सी बालिका रही होंगी, तब स्त्री शिक्षा की चेतना का जन्म तक न हुआ था। वच्ची के जन्म लेते ही उसके विवाह की चिंता पहले पड़ जाती थी। जिस पिता ने अपनी कन्या का कन्यादान, उसके रजस्वला होने से पूर्व नहीं किया तो वह नरकगामी होगा, इस भावना के वशीभूत पिता अपनी बच्ची का विवाह जल्दी से जल्दी कर, नरकगामी होने से बच जाने की भावना से संतुष्ट होता था और पति, सास-ससुर, ससुराल आदि का अर्थ न समझने वाली लड़की का विवाह हो जाता था। हाँ इन शब्दों को सुन मात्र कुर्ता पहने 'फूलो का कुर्ता' वाली लड़की की भाँति, लजाकर कुर्ते से मुँह को ढक लिया करती थी या ज्यादा से ज्यादा, "तेरी कुड़माई हो गई?" के उत्तर में 'धत्' कह दिया करती थी। ऐसी ही अवस्था में माँ का विवाह भी हो गया होगा क्योंकि मेरे नाना जी और मेरे बाबाजी, दोनों ही परंपरावादी और रूढ़िवादी थे।

तो माँ का विवाह बचपन ही में हो गया होगा। पूजा-पाठ आदि संस्कारों के साथ, वह अपने मैके के मारवाड़ी सेठों से, दस रुपये के सालभर में बारह रुपये बना लेने के गुर भी सीखकर आई थी। माँ के धर्म-कर्म की सीमा, स्नान-ध्यान, व्रत, शिवजी मूर्ति पर जल चढ़ाना, दीयाबाती करना, चौके की शुचिता आदि तक ही सीमित थी। माँ केवल बीस तक की गिनती ही जानती थी। उसी से उसने सारे जीवन अपना काम बखूबी चला लिया था। चालीस, साठ आदि को वह दो बिस्सी, तीन बिस्सी आदि से लेकर बीस बिस्सी यानी चार सौ तक का हिसाब लगा

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिया करती थी। मैं समझता हूँ कि इससे अधिक की कभी उसे आवश्यकता भी न पड़ी थी। तब पैसे वाले लोग पेंट की बेल्ट के आकार की लम्बी सी थैली रखते थे जिसे व्यक्ति कुर्ते के नीचे टूरिस्टों के पाउच की भाँति कमर पर लपेट लिया करते थे। माँ के पास भी ऐसी ही नोली थी। गाँव की स्त्रियाँ, माँ के पास अपने चाँदी के गहने गिरवी रख जाती थी और दस रुपये ले जाती थी, फिर एक रुपया मासिक साल भर तक देती रहती थी। माँ के पास रुपयों की कमी नहीं रहती थी, घर की सारी आय की मैनेजर माँ हुआ करती थी। पिताजी को आय-व्यय से कोई सरोकार नहीं था। मैं शहर चला आया तो माँ से झूठ-सच बोलकर रुपये ठग लिया करता था। कदाचित् माँ की अंतिम संतान होने के कारण माँ की ममता, मेरे प्रति सर्वाधिक थी। मैं शहर से प्रायः गाँव जाता रहता था। माँ कहा करती थी, "अरै सूख कै काँट्टा हो गया है, दूध पिया कर।" "हाँ, माँ खूब पीऊँगा।" सुनते ही माँ मुझे रुपये थमा दिया करती थी। मेरठ के छीपीवाड़े मौहल्ले के 'काणे हलवाई' की दुकान पर रात को रबड़ीयुक्त दूध का कुल्हड़ प्रतिदिन पिया करता था। एक आँख न होने के कारण वह काणे हलवाई के नाम से मशहूर था। खास बात यह थी कि एक महीने में मैंने कितना दूध पिया इसका हिसाब न काणे हलवाई ने रखा, न मैंने, जो मन में आया उसे पैसे दे दिए। उसे मुझ पर यकीन था, अतः उसने कभी हिसाब नहीं रखा। हिसाब, लाख कोशिश करने के बावजूद, मुझसे आज तक नहीं रखा जा सका। पर प्रतिमाह अपने अनुसार उसे भुगतान कर, उसके विश्वास को अपने प्रति दृढ़ बनाए रखता था। पिताजी की चोरी, माँ से प्राप्त हुए रुपयों से मेरी मौज रहती थी। बड़े भाइयों को चकमा देकर मैं सिनेमा देखने भाग जाया करता था, तब पाँच आने वाली क्लास में बैठकर सिनेमा देखता था। एक बार एक बड़े भैया के सामने मेरी चोरी पकड़ी गई थी। जब वे भी सिनेमा देख रहे थे। वे तो मुझसे सवाल कर सकते थे, पर मुझे तो उनसे सवाल करने का अधिकार नहीं था। खैर,

मुझे अच्छी प्रकार याद है कि मैं माँ के स्तनों से लिपटा रहता था, भले ही उनमें दूध न था, पर मुझे चचोड़ने की आदत सी पड़ी हुई थी। माँ बहुत परेशान रहती थी मेरी इस आदत से—'अरे मरे छोड़ ना', कहती हुई अक्सर मुझे डराती रहती थी, 'बुलाऊँ हरद्वारी नै' कहकर जोर से

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आवाज लगाती थी–"अरै हरद्वारी, देख विद्या नै, मनै छोड़ता ई नईं"। मैं बड़े भैया से डरता था। उनके डर से, मैं दरवाजे की कुंडी लगा स्वयं को बड़े भैया के भय से मुक्त महसूस करता और फिर जा चिपटता था माँ से। माँ मुझे कहानियाँ सुनाया करती थी। मैं कहता, "माँ, कहानी सुना" वह गणेश जी, सती सावित्री आदि कहानियों के साथ मुझे एक कहानी और सुनाया करती थी–एक राजा था, उसे एक भंगन से प्यार हो गया, राजा रात में चुपके-चुपके उसके घर जाया करता था, एक दिन राजा ने कहा कि भूख लगी है, कुछ खाने को दे दे, भंगिन ने किसी के यहाँ से आए झूठे चावल खाने को दिए, चावल खाकर राजा को नींद आ गई और वह टूटी सी खाट पर पड़कर सो गया। कहानी खत्म। फिर माँ बोली–"इश्क न देखे जात कुजात, भूख न देखे जूठा भात, नींद न देखे टूटी खाट।"

आज मैंने समाचार पढ़ा कि एक राजकुमार ने एक हरिजन के घर भोजन किया और वहीं रात बिताई। मुझे बचपन में सुनाई माँ की कहानी याद आ गई–बस एक शब्द का ही अंतर है–माँ की कहानी में इश्क था जो जात-कुजात नहीं देखता था और यहाँ वोट है, जिसके इश्क में पड़कर राजकुमार हरिजन के यहाँ भोजन कर आया है, रात बिता आया है। वह बात दीगर है कि घर आकर उसने डिटॉल युक्त पानी के साथ खूब मल-मलकर स्नान किया हो। सोचता हूँ माँ की कहानी कितनी देशकाल निरपेक्ष है।

माँ से मैंने एक बात सीखी थी, जिसका आज तक पालन करता चला आ रहा हूँ। मैं दीपक को फूँक मार कर नहीं बुझाता। सोते समय मैं कहता, "माँ दीया बुझा दे।" वह डाँटती हुई कहती, "अरे बुझा नहीं कहत्ते, बढाणा कहत्ते हैं।" बिना किसी तर्क-वितर्क के मैंने माँ की बात पल्ले बाँध ली। कभी दीपक बुझाने की बात आती है तो मैं दीपक बढ़ाना ही कहता हूँ और अपने किसी के भी हैप्पी बर्थडे पर मेरे आदेशानुसार मोमबत्ती नहीं बुझाई जाती, 'बुझाने' से मेरे हृदय पर अच्छा प्रभाव नहीं पड़ता। दीपक बढ़ाते हुए, माँ गुनगुनाती सी कहती थी–"जा दीये घर आपणे, तेरी अम्मा देखे बाट, तेरी धणी बिछावै खाट।" और हाथ से दीपक बढ़ाकर हाथ को मस्तक से लगा चुचकारती हुई, दीपक को प्रणाम सा करती थी। मैं कहता, "माँ दीये का घर होता है, उसकी माँ होती है,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसकी धणी (पत्नी) होत्ती है?'' माँ कहती, ''हाँ रे क्यूँ नहीं होत्ती, दीया तो म्हारे घर में चाँदणा करण आवै, इसके बिना तू अँधेरे मै चल सकै? म्हारी सेवा करै, जिब म्हानै उसकी जरूरत नहीं रहती, तो वह अपणे घर जाकै सोजा, उसकी माँ उसकी बाट जोहती रहवै, जिब तक बेट्टा काम पै तै ना आ जाग्गा तो माँ क्युँक्कर सो सकैं, तो मैं उन्नै घर भेज द्यूँ। चल इब तू भी सोजा।''

कभी-कभी दोपहरी में, जब माँ आराम करने लेट जाती थी तो मैं कहता था, ''माँ कहानी सुणा।'' माँ कहती, ''दिन में कहानी नहीं सुनात्ते, माम्मा रस्ता भूल जागा।'' और माँ उदास सी हो उठती थी। ''पर मेरै तो माम्मा हैई नहीं, फिर किंघे तै रस्ता भुल्लैगा?'' ''हाँ-हाँ चुप हो जा, सोण दे मनै।'' कहकर वह करवट बदलकर सो जाती थी। आज सोचता हूँ कि ''मेरे तो माम्मा हैई नहीं'' कहकर मैंने माँ के हृदय पर जैसे एक घूँसा मार दिया हो और वह अपने एक मात्र भैया की खोज में खो गई हो। जिसे उसने अपने हाथों श्मशान रवाना कर दिया था। हमारे यहाँ तो भाई को बहिन के लिए इतना विशिष्ट माना गया है कि लोक में एक उक्ति प्रचलित हो गई कि 'राँड कोण? जिसका भैया मरजा', खसम का क्या है और मिल जाएगा, पर सहोदर को तो लौटाकर नहीं लाया जा सकता।

माँ के जीवन में कोई दिन अपवाद रूप में भी ऐसा नहीं आया कि वह रात्रि में बर्तन माँजकर न सोई हो। माँ कहा करती थी, ''झूठे बरतन पड़े-पड़े सारी रात गाळी देंगे के किस कमबख्त के घर आ ग्ये।'' यह माँ के लिए एक आस्था का सा विषय था। माँ भोर में उठकर चक्की चलाया करती थी। चक्की चलाते-चलाते हुए वह धीरे-धीरे कुछ गाती रहती थी। चक्की के भी गीत होते थे, मुझे उनका स्मरण नहीं, गेहूँ पिसाई के साथ-साथ हरि भजन भी चलता रहता था। माँ के राज में, सारे दिन घूँघट में लिपटी बहुएँ सबसे पहले उठती थीं और सबसे बाद में, माँ के पैर दबाकर सोया करती थी। सच्चे अर्थों में वह एक पारंपरिक सास थी। सास बहू के रिश्ते में, बहू सास को सम्मान देते रहने को बाध्य होती थी और सास, बहू के लिए एक डिग्नीफाइड आतंक हुआ करती थी। अब उस रिश्ते को निखारने के लिए उसमें स्नेह, ममता भर देने के लिए नया नारा दिया जाने लगा है कि सास को माँ और बहू को बेटी, बन जाना चाहिए। इस नारे का परिष्कृत रूप जो देखने में आ रहा है वह कुछ-कुछ

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसा लगता है जैसे बहू घूँघट उघाड़ जीन्स पहन, हैलो मॉम, टेक केयर, आई लव यू, हैप्पी बर्थडे टु मॉम आदि के लबादे ओढ़ 'बहू' को बॉय कर, 'बेटी' रूप में प्रकट हो गई है पर सास, माँ नहीं बन सकी है—बनी है उतने ही दिखावे के साथ जितनी कि बहू। आज सास बहू दोनों ऊपर से माँ, बेटी दिखाई पड़ती हैं पर भीतर-भीतर 'पता नहीं कब पिंड छूटेगा इस बुढ़िया से मैं निकालूँगी इसकी दरोगाई।' और 'कहाँ से मेरे पल्ले पड़ गई यह काले सिर वाली, मेरे बेटे को हर ले गई? ये लच्छन होते हैं बहुओं के, न लाज न सरम? यही सिखाया था इसकी कुलच्छिनी माँ ने?'' आदि-आदि, एक कोल्ड वार चलती रहती है। और संस्कारी बेटा, दो पाटों के बीच पिसता रहता है, उसके एक ओर खाई दूसरी ओर खत्ती, किंकर्तव्यविमूढ़, न उगले बने न निगले की ऊहापोह में, एक दिन माँ-बाप को वृद्धाश्रम पहुँचाने को लाचार होकर पत्नी की चोरी-चुपके उन्हें पैसा देता रहता है, विदेश में हुआ तो लाचारी है, पास के ही किसी शहर में हुआ तो कमाऊ पत्नी से चोरी-छिपे उनके आँसू पोंछ आया करता है। कुछ कम संस्कारी और अधिक मॉड हुआ तो माँ के दूध की कोई कीमत होती है, इसे तक भूल जाता है। बूढ़े माँ-बाप को भी कम मनस्ताप नहीं झेलना पड़ता। आखिर कैसे बर्दाश्त कर लें माँ, अपनी कोख के जाए अपने रक्त से सींच-सींच कर पाले-पोसे बेटे को। एक क्षण में ही कोई गैर लड़की अपहृत कर ले जाए और वह टुकुर-टुकुर देखते रह जाए और बुढ़ापे में जिस पुत्र के सहारे की उसे सबसे अधिक आवश्यकता होती है, उसे कोई यूँ ही झटक कर ले जाए। और एक अनुत्तरित प्रश्न सामने आ खड़ा है। अपनी कोख से जन्मा और बीस बाईस वर्षों तक खुद नंगे भूखे रहकर पाला-पोसा अपना अंश एक क्षण में ही अपनी गोद से उछलकर एक अनजान लड़की की गोद में जा बैठता है। वैसे इस प्रश्न का उत्तर भी है, जो ऐसी दुखी माँ को ढाँढस बँधा सकता है यदि वह माँ अपने उस समय को याद कर ले जब वह बहू बनकर आई थी तो उसने भी तो किसी माँ के बेटे का अपहरण कर लिया था। ईमानदारी से विचार करे तो माँ को कदाचित् कुछ संबल मिल जाए, पर वह जानते हुए भी उसे भूल जाती है, उसे जस्टीफाइड नहीं मानती। ऐसा सोचने से उसे कुछ त्राण मिल सकता है। माँ की सोच इतनी ईमानदार बन जाए तो सास-बहू के झगड़े काफी हद तक सँभल सकते हैं। आज सोचता हूँ कि सौभाग्यशालिनी थी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरी माँ जिसने इस प्रकार के मनस्ताप नहीं झेले—अपने पाँचों बेटों और पति के कंधों पर चढ़कर वह शान के साथ पोतों-धेवतों आदि से चँवर डुलवाती विदा हुई थी। ऐसी विदाई की कामना के लिए ही तो हमारा हिन्दू मानस न जाने प्रभु के सामने कितना-कितना गिड़गिड़ाता है।

अनेक लोकविश्वासों की छाया में माँ ने अपना जीवन गुजारा। मैं जब छोटा-सा था, मैंने कई बार अपने आँगन में, दालान में साँप देखा था। मैं डर कर भागा, "माँ साँप।" चिल्लाया। माँ ने कहा, "नहीं रे, साँप नहीं, यह म्हारा कुलदेवता है। हाथ जोड़ ले" कहती और कहती "हे महाराज, कुछ भूल हो गई, छमा कर, गलती सुधारूँगी।" और कुलदेवता प्रस्थान कर जाते थे। एक बार माँ चक्की चला रही थी, माँ के पैर से कुलदेवता लिपट गए, उसने हाथ से पकड़ा और एक ओर को सरका दिया। घर के सभी लोगों ने यदा-कदा कुलदेवता के दर्शन किए थे, उन्होंने कभी किसी को नहीं काटा। एक बार कुलदेवता दोपहरी में आँगन में जमकर बैठ गए। माँ ने हाथ जोड़े, विनती की पर वे नहीं हटे। माँ ने मनन किया कि कहाँ गलती हो गई? तो उसे याद आया कि किसी शुभ अवसर पर कुलदेवता के नाम की चादर नहीं चढ़ाई गई थी। माँ ने कहा था, "महाराज आज ही थारा नेग दे दूयूँगी, माफ करो इब जाओ।" और कुलदेवता चले गए, माँ ने उनके नाम की चादर निकाली थी। और आज तक हमारे परिवार में हर किसी लड़के की शादी में, कुलदेवता का जोड़ा दहेज रूप में सबसे पहले माँगा जाता रहा है। हमारे परिवार में अभी तक तो कोई ऐसा बुद्धिजीवी पैदा नहीं हुआ जो इस परंपरा को तोड़ने का साहस दिखा सके, जबकि हमारे लम्बे-चौड़े परिवार में, डॉक्टर, इंजीनियर, प्रोफेसर, विदेश में सेवा करने वाली डॉक्टर बहू, आदि सभी तरह के व्यक्ति हैं, पर प्रगतिशीलों की आलोचना से डरने वाला एक भी बुद्धिजीवी नहीं पैदा हुआ। जो भी हो, इसे आप अंधविश्वास, मनोविज्ञान, आदि कुछ भी कह सकते हैं, पर है यह मेरी आँखों देखा सच—तो ऐसी स्मृतियों को मैं क्यूँ भूलूँ?

●

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्यूँ भूलूँ?

(मेरे संस्कार और जयप्रकाश 'भारती')

एक दिन मार्च 10 में मैं, दिल्ली के विश्वास नगर में एक प्रकाशक के यहाँ बैठा चाय पी रहा था, तभी एक कृषकाय वयोवृद्ध सज्जन पधारे, प्रकाशक ने उन्हें सम्मानपूर्वक बिठाया, मुझसे परिचय कराते हुए उन्होंने कहा, "इन्हें तो आप जानते होंगे?"

"नहीं, इससे पूर्व मैंने इनके दर्शन नहीं किए।" मैंने कहा।

"ये हैं श्री भरतराम भट्ट, हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक।"

मैंने उठकर उन्हें प्रणाम किया। "माफ कीजिए भट्ट जी, आपका नाम सुना है, पर दर्शन-लाभ आज हुआ है। चलिए देर आयद दुरुस्त आयद।" कहकर मैं मुस्कराया। भट्टजी ने भी मुस्कराकर नमस्कार की। प्रकाशन उनके अपने घर में ही है। प्रकाशक महोदय प्रातः स्नान ध्यान से निवृत्त हो, लाल टीका धारण किए हुए प्रूफ रीडिंग कर रहे थे, दुकान में ग्राहकों जैसी कोई हलचल नहीं थी, वातावरण शांत था, अतः निःसंकोच बातें होती रही। बिना मेरी सुने भट्ट जी अपने ही विषय में, अपने धुर अतीत तक के संस्मरण सुनाते रहे। मुझे थोड़ी जल्दी थी, मैं उठकर चला जाना चाहता था, पर उन्हें सुनने के लिए मुझे बाध्य होना पड़ा। उनकी एक बात मुझे बहुत अच्छी लगी, उसने मेरे हृदय से तादात्म्य स्थापित कर लिया। वे बोले,

"मेरे पिताजी कट्टर परंपरावादी एवं रूढ़िवादी थे। कोई हरिजन काफी दिनों से हमारे यहाँ कार्यरत था। एक दिन मैंने उसके घर भोजन कर लिया। मेरे पिताजी को पता चला, वे बहुत नाराज हुए और बोले, "तू तो भ्रष्ट हो गया है।" मैंने उनसे तर्क किया, कि "पिता जी, इसे

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारे यहाँ भोजन करते-करते वर्षों बीत गए, यह आज तक पवित्र नहीं हुआ और मैं इनके यहाँ एक दिन भोजन करने मात्र से भ्रष्ट हो गया?" और मुझे लगा जैसे भट्टजी मेरी ही बात कह रहे हैं।

मेरे पिताजी कट्टर सनातन धर्मी थे—परंपरावादी, रूढ़िवादी, कर्मकांडी, छुआछूत में मनसा वाचा कर्मणा, विश्वास करने वाले। 1942 में जब गाँव से मैं मेरठ पढ़ने चला आया तो मेरा एक सहपाठी हरिजन लड़का वीरसेन, मेरठ के हापुड़ बस अड्डे के निकट कुमार आश्रम में रहता था। मैं प्रायः वीरसेन के साथ उसके छात्रावास कुमार आश्रम चला जाया करता था और कई बार मैंने उसके साथ बैठकर भोजन किया। यह कार्य मैं चोरी छिपे करता था। सतर्क रहता था कि कहीं पिताजी को इसका पता न चल जाए। भट्ट जी की भाँति, पिताजी से तर्क करने का साहस मैंने जान बूझ कर नहीं दिखाया। कदाचित् मेरे भीतर आचार्य रामचंद्र शुक्ल की भावना काम कर रही थी—उन्होंने कहा है व्यक्ति दो प्रकार के होते हैं, एक वे जो परंपराओं को जानबूझकर तोड़ते हैं, दूसरे वे जो उन्हें व्यर्थ समझते हुए भी उनका पालन करते हैं। मैं भी सोचा करता था कि पिताजी को मेरे इस कृत्य से कष्ट होगा तो व्यर्थ में उन्हें क्यूँ कष्ट दूँ? इसमें भय भी समाहित था। मैं जानता था कि मेरे इस कर्म से परंपराएँ तो समाप्त नहीं ही होंगी, तो आ बैल मुझे मार जैसी स्थिति क्यों पैदा की जाए।

माता-पिता, बालक को कुछ अच्छे संस्कार देते रहते हैं, कुछेक बातों को सिखाने के लिए वे कठोर दंड का सहारा भी लेते रहते हैं—मैं छोटा सा ही था, कोई सज्जन आए, पिता जी ने आवाज लगाई, "विद्याभूषण इन्हें जल पिलाओ।" मैं गया गिलास में पानी भरा और पहले मैं 'स्वयं पी गया, मुझे भी प्यास लगी थी। दूसरे स्वच्छ गिलास में पानी लेकर मैं पहुँचा पिताजी ने मेरे मुँह पर पानी लगा देखा, देखते ही पिताजी ने मेरे मुँह पर जोर से चाँटा मारा, "पानी पीकर लाया है। जा दूसरा गिलास भरकर ला, मेहमान को पहले पिलाकर, फिर पानी पीते हैं?" मैं सुबकता चला गया, मुझे अपनी कोई गलती नजर नहीं आई कि मैं तो सच्चे गिलास में पानी लाया था, अपना झूठा गिलास तो मैंने झूठे बर्तनों में रख दिया था।

अब सोचता हूँ कि पिताजी मुझे प्रेम से समझाते हुए कहते, कि "देखो बेटा, किसी को पानी पिलाने से पहले स्वयं पानी पीना बुरी बात

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होती है, पहले किसी को पिलाओ, फिर स्वयं पीओ। तो क्या प्यार से समझाई गई वह सीख इतनी स्थायी होती कि मैं आज तक उसका पालन करता चला आ रहा हूँ और बच्चों को भी मैंने वही संस्कार दिए। फिर सोचता हूँ थप्पड़ खाकर सीखी हुई सीख, स्थायी होने पर भी क्या उतनी प्रभावी रह सकती है? इस संदर्भ में किसी कॉलेज के ब्राह्मणेतर जाति के एक हँसमुख प्रवक्ता के विषय के मैंने सुना था कि वे किसी भी ब्राह्मण को पानी का गिलास लाकर पकड़ाने से पूर्व उसमें थूक दिया करते थे। अंतर्मन में, जाति-विरोध की जाग्रत भावना, कितने भीतर तक घुसकर प्रहार कर सकती है, मैं सोचने को लाचार हो उठा। इसी प्रकार के एक और चरित्र के विषय में सुना है, दो दोस्त शराब पी रहे थे। पीते-पीते वे अपने होशोहवास खो बैठे। एक ने कहा, ''यार थोड़ी सी और दे दे।''

''और नहीं है, खत्म हो गई।''

''नहीं, पिला दे, कुछ भी कर कहीं से भी ला पर थोड़ी सी ला दे, जा जल्दी कर।'' परेशान हो, वह उठा और भीतर से आधा गिलास भर कर उसे पकड़ाया, ''ले मर।'' कहकर वह लेट गया। पीते-पीते उसने कहा, ''यार कैसी ले आया, अजीब सा स्वाद है?''

''पीजा, पीजा और चुपचाप सो जा'' और वह मूत्र का गिलास पीकर सो गया।

वह कुत्सित कृत्य तो नशे की उपज था, पर वे तो माननीय प्रोफेसर साहब हैं, नशे में नहीं हैं। तो सोचता हूँ, जाति, धर्म, संप्रदाय आदि का विरोध तो नशों के नशे से भी ज्यादा, नशीला होता है, उसमें तो प्राणो तक की बाजी ज़ानबूझ कर लगा दी जाती है, कहने की आवश्यकता नहीं कि ऐसे नशेड़ियों से आज सम्पूर्ण विश्व में त्राहि-त्राहि मची हुई है।

मेरे पिताजी एक ओर जहाँ कट्टर धर्मावलंबी थे, छुआछूत में विश्वास करने वाले थे, दूसरी ओर सत्यवादी भी थे। मेरे ताऊजी के पुत्र रामकुमार का किसी किसान से मुकदमा चल रहा था, मजिस्ट्रेट के सामने, पिताजी से गवाही दिलवाने का प्रश्न रामकुमार के सामने उठ खड़ा हुआ क्योंकि रामकुमार के विरोधी किसान ने मजिस्ट्रेट से कहा था कि मैं रामकुमार के सगे चाचाजी की गवाही को ही सही मान लूँगा, जैसे वे कहेंगे, उसे ही सच मानूँगा, भले ही वह मेरे खिलाफ जाए। रामकुमार के लाख कोशिश करने के बावजूद पिताजी ने उसके पक्ष में गवाही देने से

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साफ इंकार कर दिया। उन्होंने कहा, "रामकुमार तू चाहता है कि सारे गाँव के सामने मैं झूठ बोलूँ। इन गाँववालों को और भगवान को मैं क्या जवाब दूँगा, झूठ और भी गीता पर हाथ रखकर कसम खाकर बोलूँ, मेरे लिए यह कदापि संभव नहीं, तू कोई और गवाह ढूँढ ले। और रामकुमार मुकदमा हार गया था।

गाँववालों ने एक स्वर से उन्हें गाँव का प्रधान बना दिया, कुछ दिनों बाद उन्होंने यह कहते हुए उसे छोड़ दिया, "ये झूठे-सच्चे काम मेरे बस के नहीं।" इस प्रकार के कार्यों में उनकी रुचि नहीं थी, बस अपनी पूजा-पाठ अपने धर्मकर्म में ही मग्न रहते थे। मेरे भीतर वे संस्कार थे, पर उनका पालन मैं कितना कर सका? संस्कार मरते नहीं, कहने मात्र को रह जाते हैं, देश कालानुसार उनमें कतरब्यौंत होती रहती है—मैं यज्ञोपवीत धारण करता हूँ, पर उसका अक्षरशः पालन नहीं कर पाता, धार्मिक क्रियाकलापों, अनुष्ठानों, देवी-देवताओं में मेरी पूर्ण आस्था है, मतलब संस्कारों को मैं अपनी सुविधा, रुचि के अनुरूप ढाल लेता हूँ, हरिजनों के साथ बैठकर भोजन करने में मुझे कोई आपत्ति नहीं। ईसाइयों का कंफेशन मुझे अच्छा लगता है, क्योंकि उसमें व्यक्ति कम से कम प्रभु के समक्ष, कंफेशन बॉक्स में खड़ा होकर अपने अपराधों को स्वीकार कर लेता है। अपराध-बोध, स्वयं में एक बड़ी बात है, बोध होगा तो उसके परिष्कार की सम्भावना भी रहती है और नहीं तो कम से कम उसे उस अपराध का थोड़ा बहुत पश्चात्ताप तो होगा। मुसलमानों का पाँच वक्त की नमाज अता करने के पीछे कम से कम यह तो नजर आता है कि इंसान दिन में, सुबह से रात तक अल्लाह का स्मरण करता है—पाँच बार नमाज अता करने से दस-बीस मिनिट पहले और दस बीस मिनिट बाद तक अपने परवरदिगार में मग्न रहता है, फिर इसमें मुझे योगासन जैसी कुछ वैज्ञानिकता भी नजर आती है। खतना को मैं विज्ञान-सम्मत मानता हूँ। आशय है कि मुझे जहाँ जो अच्छा लगता है उसकी प्रशंसा करता हूँ। यह मैं कभी नहीं कहता कि मेरा धर्म-कर्म ही अच्छा है, उसे ही सब लोगों को अपनाना चाहिए। 'मुंडे मुंडे मतिर्भिन्ना' जिसे जो अच्छा लगे करे।

हमारे घर में साधु-संन्यासी आते रहते थे। जगत्गुरु शंकराचार्य स्वामी कृष्णाबोधाश्रम जी महाराज हमारे घर, मंदिर में कई बार ठहरे थे। घर के बाहर मंदिर के हिस्से में ही उनकी भिक्षा की व्यवस्था की गई थी।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामीजी की स्मरणशक्ति बड़े गजब की थी—एक बार मेरे अग्रज, कई वर्षों बाद स्वामीजी के दर्शन करने गए, उन्होंने देखते ही कहा, "अरे विष्णुदत्त, कैसे हो, तुम्हारे पिताजी कैसे हैं?" किसी व्यक्ति को एक बार देख लेने के बाद वे भूलते नहीं थे। मैं छोटा सा ही था, फिर भी यथाशक्ति मैं साधु-संन्यासियों की सेवा किया करता था, कुएँ से पानी खींचता, उनके हस्तप्रक्षालन कराता, उनके कमंडलुओं को जल डाल-डालकर धुलवाता था, बैठकर उनके आशीर्वचनों को सुना करता था। स्वामी कृष्णाबोधाश्रम जी की प्रेरणा और आदेश से, पिताजी ने गाँव के आसपास के इलाकों में अनेकानेक शतचंडी यज्ञ कराए थे, कई-कई दिनों तक यज्ञ हवनादि के कार्यक्रम चलते रहते थे, पूरे गाँव में एक अजीब-सी भीनी-भीनी गंध फैल जाया करती थी, आस्था का एक सैलाब सा आ जाता था, संपूर्ण वातावरण महक उठता था। सामान्यतः गाँव के बाहर किसी बाग-बगीचे में यज्ञ हुआ करते थे, वेद पाठी पंडितों को दूर-दूर से बुलाया जाता था, पिताजी को ही यज्ञाध्यक्ष बनाया जाता था और उन्हें ही व्यास की गद्दी पर बिठाया जाता था।

मुझे अच्छी तरह स्मरण है, मैं कुएँ की मेंढ पर खड़ा हुआ एक संन्यासी के हाथ धुलवा रहा था। वे बोले, "तेरा नाम अच्छा है विद्याभूषण।" मैंने पूछा, "इसका अर्थ क्या है स्वामीजी?" वे बोले, इसके दो अर्थ हैं—"यः विद्याया भूषणं सः विद्याभूषणः, अर्थात् जो विद्या का भूषण है, वह विद्याभूषण, दूसरा—विद्याएव भूषणं यस्य सः विद्याभूषणः अर्थात् विद्या ही है भूषण जिसका, वह विद्याभूषण है। तू क्या बनेगा?" कुछ खास मेरे पल्ले नहीं पड़ा, मैं बोला, "पता नहीं।" और आज तक पता नहीं चला कि मेरे नाम का अर्थ क्या है? इतना तो तय है कि विद्या का भूषण तो हूँ ही नहीं, पर विद्या को भी अपना भूषण कहाँ तक बना सका? उन स्वामी जी से मैंने पूछा था, "स्वामीजी, रस्सी टूट गई को संस्कृत में कैसे बोलेंगे?" उन्होंने बताया था, "रज्जु त्रुटि।" संभव है मुझे गलत याद रहा हो।

पिताजी की शब्द व्युत्पत्ति भी उनकी अपनी हुआ करती थी। कचहरी शब्द की व्याख्या किया करते थे, "कच + हरी = बाल नोंचने वाली। कच कहते हैं बाल को और हरी, हरण करने वाली। जो भी कचहरी में घुस गया, यानी मुकदमेबाजी के चक्करों में फँसा, उसके सिर

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर एक भी बाल नहीं बचता। अपवाद रूप में भी कभी किसी से उनकी मुकदमेबाजी नहीं हुई। उन्हीं दिनों सहकारी आंदोलन ने भी अँगड़ाई ले ली थी। सोसायटी नाम खूब प्रचलित हो गया था। वे कहा करते थे– "सोसायटी का अर्थ है सौ के साठ, सौ रुपये के साठ ही रह जाएँगे, बाकी सोसायटी के सेक्रेटरी, पटवारी वगैरह खा जाते हैं। आदमी ठगा जाता है, उसके पल्ले कुछ नहीं पड़ता और आज तो सोसायटी पूरी की पूरी ही डकार ली जाती है।

पिताजी स्त्रियों के घूँघट निकालने के पक्षपाती थे। वे कहा करते थे कि यह शब्द लुगाई नहीं लुकाई है, लुकाकर, छिपाकर रखी जाती है। हमारा घर, जनाना और मर्दाना दो हिस्सों में बँटा था। दोनों के बीच एक छोटा सा दरवाजा था। पुरुष घर के भीतर भोजन करने या आवश्यक कार्य से ही प्रवेश कर सकते थे। मुझे स्मरण नहीं कि उन्होंने कभी मुझे या किसी और बच्चे को गोदी में उठाया हो, कदाचित् उन्हें भय रहता था कि कहीं बच्चा टट्टी-पेशाब कर दे तो उन्हें स्नान करना पड़ेगा। उनका भय मेरे भीतर तक में व्याप्त था। एक बार मेरे सबसे बड़े भैया अपनी पुत्री को गोदी में लिए खड़े थे। सामने से पिताजी आते दिखाई पड़ गए, उन्होंने उस बच्ची को झट नीचे छोड़ दिया, खैर चोट तो उसे नहीं आई, लेकिन आ सकती थी। मैं पिताजी के साथ ही सोया करता था, सारी रात मुझे भय लगा रहता था कि कहीं नींद में मेरा कोई हाथ-पैर उनसे लग गया तो नाराज न हो जाएँ। मकर संक्रांति से कुछ दिन पहले ही मुझे भय सताने लगता था। मकर संक्रांति के दिन वे प्रातः अंधेरे में ही मुझे उठाकर, कुएँ की मेंढ पर नंगा खड़ा कर देते थे और कुएँ से डोल भर-भर कर मेरे ऊपर डालते थे। सर्दी में मेरी किटकिटी बँध जाती थी। इसके अतिरिक्त उन्होंने अपने पुत्रों से कभी यह अपेक्षा नहीं रखी, न ही हमें आदेश दिया कि तुम लोग मेरे अनुसार स्नान, ध्यान, पूजा-पाठ में समय लगाओ। बस संध्या की आरती के समय घर के सभी सदस्यों को सम्मिलित होना पड़ता था।

बरसात की एक रात में, मैंने मेंढकों की तेज टर्र-टर्र सुनी, मैंने पिताजी से कहा, "पिताजी ये क्या कह रहे हैं?" पिताजी ने जवाब दिया कि इनमें एक की शादी है, ये सब मिलकर नाच गा रहे हैं–चलो बरात, चलो बरात, चलो बरात–बीच में एक मोटा सा मेंढक कह उठता था–

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"कौन? कौन? कौन? फिर एक और चौधरी बना मेंढक जोर से कहता था—"हम तौं, हम तौं, अरे हम और तुम चलेंगे और कौन जाएगा? कभी ध्यान से सुनो तो ऐसा ही लगता है जैसे बरात की जाने की तैयारी में मेंढक शोर मचा रहे हों। बीच-बीच में ऐसी ऊँची आवाज रहती है जैसे बरात के बैंडबाजे में बीच-बीच में सबसे बड़ा भोंपू—भौं कर उठता है।

मेरे इस परिवेश का मुझ पर इतना प्रभाव पड़ा कि मैं संस्कृत, हिन्दी, हिन्दू और हिन्दुस्तान का प्रेमी हो गया, पर इनका एकनिष्ठ प्रेमी भी कहाँ बन सका? बी.ए. तक संस्कृत विषय लेकर, संस्कृत को बाय कर गया, हिन्दी को माँ का दर्जा मात्र इसलिए देता रहा कि उसने मेरी मृत्युपर्यंत मेरी दाल रोटी का जुगाड़ फिट कर दिया है अन्यथा मैंने एक आधुनिक पुत्र की भाँति उसकी कोई सेवा नहीं की, बच्चों को भी इंग्लिश माध्यम में डालकर उसकी उसी प्रकार उपेक्षा कर दी जैसे आजकल के बच्चे बूढ़े माँ बाप की कोई परवाह नहीं करते। 'हिन्दू' को मैंने अपनी सुविधानुसार प्यार किया। रह गया हिन्दुस्तान—उससे भी एक निष्ठ प्रेम नहीं कर सका, बच्चे को कह दिया कि छोड़ हिन्दुस्तान और बसा रह सिडनी, हिन्दुस्तान भी कोई रहने की जगह है? तो एक निष्ठ प्रेम किसी से न कर सका। शुरू-शुरू में, उन्हीं संस्कारों के वशीभूत मैंने उर्दू को पिताजी की भाँति म्लेच्छ भाषा समझा लेकिन बाद में लगा कि उर्दू तो मेरे अंतर्मन से ऐसी चिपक गई कि उसका तिरस्कार अब नहीं कर सकता। पिताजी को उर्दू शब्दों तक से चिढ़ थी। हम कभी भूल से कह दिया करते थे कि 'पिता जी खाना खालो।' वे डाँट कर कहते थे कि "क्या खाना खालो, खाना खालो मचा रखी है, भोजन कर लो या रोटी खालो नहीं कह सकते?"

मैं भी पिताजी की भाँति सोचा करता था कि अमुक शब्द किस प्रकार बना। मैंने 'अंगोछा' सुना। तो मेरी बाल बुद्धि ने तुरंत घड़ लिया कि चूँकि इससे अंग पोंछते हैं तो अंगोछा = अंग + पोंछा, अंगोछा है। बाद में इसी धुन में मैंने इण्टरमीडिएट परीक्षा पास करते-करते 'प्रभाकर' परीक्षा उत्तीर्ण कर ली थी, फिर बी.ए. करते-करते साहित्यरत्न परीक्षा उत्तीर्ण कर ली थी। काव्य शास्त्र, अलंकार, छंद, आलोचना आदि विषयक जितना ज्ञान मुझे बी.ए. तक हो गया था, वह आज नहीं है।

जब मैं पढ़ने के लिए मेरठ चला आया था, तो बड़े भाई साहब के परिवार के साथ, मेरठ के सराय लालदास मोहल्ले की सेठों की गली में,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सेठ किशोरीलाल महेश्वरी के मकान में किराये पर रहता था। उस मकान के बराबर वाले दुमंजिले मकान में दो मुख्त्यार रहते थे। नीचे वाली मंजिल में रहने वाले मुख्त्यार साहब बड़े प्रभावशाली व्यक्तित्व के धनी थे—लम्बी कद-काठी, लम्बी मूँछें, बड़े-बड़े नेत्र और चेहरे पर सदा मुस्कान। प्रातः दस बजे के करीब वे कचहरी जाने के लिए अपनी साइकिल उठाकर अपने घर की दो-तीन सीढ़ियाँ उतरकर सड़क पर आते थे तो अक्सर मैं उनके सामने स्कूल जाता हुआ पड़ जाता था। देखते ही मुझे कहा करते थे, "कहो विद्याभूषण, पढ़ाई कर रहे हो?" "हाँ जी।" "खूब मेहनत से पढ़ना" कहकर मुस्कराते थे और दाईं टाँग को साइकिल के पीछे से घुमाते हुए सीट पर बैठ जाते थे और साइकिल चलाकर कचहरी के लिए रवाना हो जाते थे। उनके पुत्र का नाम जयप्रकाश था। जयप्रकाश मुझसे काफी छोटा था। मैं उसे अक्सर चिढ़ाया करता था—

"जयप्रकाश तेरे पिताजी मुख्त्यार हैं ना? पता है मुख्त्यार किसे कहते हैं?" अपना संस्कृत-ज्ञान बघारते हुए मैं उसे कहता था, "मुखस्य बालं तारयति इति मुख्त्यारः समझ गया जयप्रकाश? जो मुख के बाल उतार लेता है, वह मुख्त्यार कहलाता है। तब मुख्त्यार एक प्रकार से छोटे वकील हुआ करते थे, अब मुख्त्यार कोई नहीं होता सभी डिग्री होल्डर एडवोकेट होते हैं। आज अक्सर देखने में आता है कि ग्रामीण युवक इस पेशे को अपनाते जा रहे हैं। एक दिन गाजियाबाद कचहरी में मुझे एक वकील साहब मिले। मुझे देखते ही मेरे पैर छुए, 'गुरुजी प्रणाम।' मैं चौंका "अरे शरारती सोहनवीर तू?" "जी हाँ गुरुजी।" "वेरी गुड, प्रैक्टिस ठीक चल रही है?" "आपका आशीर्वाद है गुरु जी, गुरु जी कोई काम है यहाँ?" "हाँ भाई यहाँ बिना काम कौन आता है? एक एफेडेविट बनवाना था।" और उसने 15 मिनिट में एफेडेविट मेरे हवाले कर दिया। मैंने बहुत जिद की, पर उसने कोई पैसा नहीं लिया और सोहन वीर मुस्कराता चला गया। मुफ्त में मेरा काम कर, जो गर्वीली सी मुस्कान उसके चेहरे पर आई थी, उसका अर्थ मैं नहीं समझ सका, कदाचित् वह समझ रहा था कि आज मैंने एक सच्चे शिष्य का धर्म निभाया। इसी प्रकार एक और छात्र था, मेरे घर पर ही मुझे ड्राइविंग लाइसेंस पकड़ा गया था। मैंने सोचा मास्टरी का कुछ और फायदा हो न हो, जिन्दगी के हर मोड़ पर कोई न कोई अपना छात्र मिल ही जाता है और फिर शिक्षक की प्रवृत्ति भी कुछ

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसी बन जाती है कि कचहरी के काम के लिए वह किसी न किसी अपने पुरातन छात्र को खोज ही लेता है—जिन खोजा तिन पाइयाँ।

हाँ तो जयप्रकाश के पिताजी मुख्त्यार थे। पिताजी के 'कचहरी' शब्द की व्याख्या से मैं प्रेरित था ही। अपने पिताजी के पेशे की व्याख्या सुनकर जय प्रकाश अपने पिताजी की भाँति मुस्करा दिया था। तब मैं सातवीं कक्षा का छात्र था। जयप्रकाश बहुत सीधा-सादा, गंभीर लड़का था। मैंने कभी उसे बोलते नहीं देखा था, कभी-कभी मुझे यहाँ तक शक हो उठता था कि यह गूँगा तो नहीं? बच्चा ऐसा गुमसुम होता है? मैं और जयप्रकाश बाद में अलग-अलग धाराओं में बँट गए। युवावस्था को प्राप्त जयप्रकाश, जयप्रकाश भारती बन हिन्द पॉकेट बुक्स से जुड़ गया और चढ़ते-चढ़ते हिन्दुस्तान टाइम्स बिल्डिंग में बाल पत्रिका, नंदन के सम्पादक की कुर्सी तक चढ़ गया। बाल साहित्यकारों की अग्रपंक्ति में जा बैठा, अनेक बार पुरस्कृत हुआ। दो-एक बार मैं, भारती से हिन्दुस्तान टाइम्स बिल्डिंग, कस्तूरबा गाँधी मार्ग, नई दिल्ली में मिला था, मुख्त्यार साहब के विषय में पूछा, उसने बताया कि पिताजी मेरे ही साथ रहते हैं, बहुत बातें हुई थी, जयप्रकाश की वही गंभीरता और मुस्कान यथावत् उसके चेहरे पर चस्पा थी। नंदन में मेरी रचना छापी, उसका पारिश्रमिक भी भिजवाया था।

आज जय प्रकाश भारती हिन्दी बाल साहित्य के महान् लेखकों में अपना नाम अंकित करा, दिवंगत हो गया है। मुझे बचपन के जयप्रकाश की याद आती है तो मेरे चेहरे पर अनायास ही मुस्कान तैर जाती है, दूसरी ओर 'भारती' को याद कर एक कचोटन सी होती है—जय प्रकाश तुझे अभी ऐसी क्या जल्दी मची थी, अभी तो हिन्दी बाल साहित्य कोश तेरी तरफ आँख गड़ाए बैठा था, अभी बना रहता तो उसे यथाशक्ति भरता रहता, लेकिन क्या किया जा सकता है? यहीं आकर तो आज इंसान ने अपनी हार स्वीकार की है।

आज मुझे बचपन के वे संस्कार, वातावरण, वे साधु-संन्यासी, स्वामी कृष्णोधाश्रम, पिताजी का संयमित जीवन ढर्रा, जैसे इन सबने इकट्ठे होकर मुझे 'कटघरे' में ला खड़ा किया है और मुझसे पूछ रहे है कि जवाब दे, ''कहाँ खो दिए वे संस्कार जिन्हें कूट-कूट कर तेरे भीतर भरा गया था, जिन्होंने मिलकर तुझे एक अच्छा सुघड़ इंसान बनाने की भरसक चेष्टा की थी और तूने अपने व्यक्तित्व को इतना डेंटेड कर लिया है कि वे डेंट कभी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं निकाले जा सकते, उन डेंटों पर कितना भी पेंट करा ले क्या वह नैसर्गिकता पुनः प्राप्त की जा सकती है? कैसे तू इतना संवेदनशून्य हो गया है? जवाब दे।''

क्या जवाब दूँ? 'हर फिक्र को धुएँ में उड़ाता चला गया', ईमानदारी से सभी प्रश्नों के उत्तर में, हाँ-सूचक गर्दन झुका लेना ही कदाचित् मेरा धर्म है, क्योंकि कोई भी दलील कारगर नहीं है, फिर माफी की अपील कर पाप-मुक्त होने की इच्छा तो मेरे सिर पर रखी गठरी को और भी बोझिल बना देगी।

तो मेरी जो समृतियाँ मुझे हर समय झिंझोड़ती रहती हैं, उन्हें कैसे और क्यूँ भूलूँ?

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्यूँ भूलूँ?

(स्वतंत्रता आंदोलन)

जब मैं छोटा सा ही था तो देखा करता था कि ग्रामीण लोग, साँग बहुत पसंद करते थे। उस समय पं. लखमीचंद, पं. बुलाकीदास (बुल्ली) के साँगों के पीछे, भीड़ उमड़ पड़ती थी। तब लोगों के लिए यह मनोरंजन का प्रमुख साधन हुआ करता था। वे लोग वस्तुतः श्रेष्ठ कलाकार थे। नाम ठीक याद नहीं, उसे अपनी पत्नी की हत्या के जुर्म में फाँसी की सजा हो गई थी। उसकी अंतिम इच्छा पूरी करने के लिए अंग्रेज गवर्नर ने उसका साँग देखा और उसकी कला से मुग्ध होकर उसकी फाँसी की सजा माफ कर उसे बरी कर दिया था–ऐसा उस समय गाँवों में सुना जाता था, कह नहीं सकता यह सत्य था अथवा मिथ। पर साँग मुझे कभी अच्छे नहीं लगते थे–पुरुषों का स्त्रीवेश में उछल-कूद करना, कान पर हाथ रखकर चिल्लाकर गाना, जोर से संवाद बोलना, स्टेज पर फूहड़ हँसी-मजाक और विशेषतः उनके गाने की तर्ज ने मुझे कभी आकर्षित नहीं किया।

आर्य समाज जैसी एजेंसियाँ, अंधविश्वास आदि दुर्गुणों से समाज को उबारने जैसा कार्य कर रही थी जिनमें कर्मकांड, श्राद्ध आदि का विरोध कर विशेषतः ब्राह्मणों का विरोध किया जाता था। रामलीला का आयोजन प्रायः प्रतिवर्ष होता था, रामायण और रामवेशधारी युवक की आरती होती थी तो आर्य समाज द्वारा उसका छुटपुट विरोध होता था। उन्हीं दिनों पिरथीसिंह बेधड़क एक प्रसिद्ध लोककवि हुआ करते थे जो हारमोनियम पर स्वरचित गीतों को गा-गाकर आर्य समाज का प्रचार किया करते थे। पिताजी कट्टर सनातनधर्मी और कर्मकांडी थे। कदाचित् उसी संस्कार के कारण पिरथीसिंह बेधड़क के भजनों की विषयवस्तु मुझे

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अच्छी नहीं लगती थी पर उनका गायन, लय आदि बहुत अच्छे लगते थे। तब मैं इतना समझ पाता था कि इनके भजनों में ब्राह्मणों का विरोध और कर्मकांड पर छींटाकशी विशेषतः श्राद्धों को लेकर है, गाँव में सभी लोग पिताजी को श्रद्धा की दृष्टि से देखते थें और पंडज्जी दंडौत' से उनके प्रति आदर व्यक्त करते थे।

जाट युवकों में, ब्राह्मण-विरोध और आर्य समाज का उभरता प्रभाव स्पष्ट दिखाई दिया। वे प्रगतिशील होते जा रहे थे, पर पिताजी से कोई भी अपशब्द कहने की हिम्मत तक, प्रगतिशील नहीं हो पाया। गाँव के कुछ प्रगतिशील जाट युवकों ने, अपने बुजुर्गों के विरोध के बावजूद, पिताजी से शिकायत की, "पंडज्जी, चूहड़े चमाराँ नैं मंदर मैं घुसण तै क्यूँ रोक्को? जमान्ना बदल ग्या है पंडज्जी, सब बराब्बर हैं, कोई छोट्टा बड़ा नहीं।"

पिताजी बोले, "मैं किसी को छोटा नहीं समझता, मैं तो तुम लोगों को भी अपने से महान् मानता हूँ, पर क्या इसका अर्थ यह है कि मुझे अपनी अलग थाली में खाने का अधिकार छोड़ देना चाहिए और तुम्हारे साथ बैठकर तुम्हारी ही थाली में रोटी खानी चाहिए?"

"अब सब बराब्बर हैं, कोई अछूत नहीं।" वह बोला।

पिताजी को थोड़ा क्रोध आया, वे ग्रामीण बोली में बोले, "ऐसा कर लाल्ला, हरफुल्ला चूहड़े नै अपणे घर बुला ल्या और उसके साथ एक थाल्ली में तो नहीं, बराब्बर बैठ के ही रोट्टी खा कै दिखा, फेर मैं सोच्चुँगा के मनै के करणा चहिए?"

"एक साथ रोट्टी खाणनै कौण कह रहा है पंडज्जी, मैं तो मंदर में दर्शन करण की बात कर रहा हूँ, भगवान के आग्गे तो सब बराब्बर हैं, सब उसी के बणाए हुए हैं।"

पिताजी के अहं को कहीं चोट सी पहुँची कि कल का यह लड़का मुझे भगवान के विषय में पाठ पढ़ाने लगा। अपने क्रोध को भीतर ही भीतर पीते हुए पिताजी बोले, "लाल्ला, तू चूहड़े चमारां नै जैसा समझै मनै पता है, तू अपणे बराब्बर उन्हां नै खाट पै तो बठा नहीं सकता, बराब्बर की बात करता है, ऐसी ही बराबरी वाली बात है तो किसी चूहड़े चमार की छोरी तै ब्याह कर ला, फेर मैं इन्हां नै मंदिर में घुसा ल्यूँगा।" कहकर पिताजी भीतर जाने के लिए मुड़े और अचानक ही वापस लौटकर बोले, "एक बात और सुण लाल्ला, तनै पता है, मंदिर किसका है?"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"थारा ही है पंडज्जी।"

"तेरा क्या, गाम के किसी भी आदमी का धेल्ला भी लग्या है इसमें? तनै पता नहीं होगा मेरे बाब्बा नै अपनी मेरठ की जदाद बेचकै यहाँ जमीन खरीद्दी, मंदिर बणवाया, पाठशाला बणवाई, गाम के लोगों मै तै किसी से भी मुफ्त में काम नहीं करया था, सबनै मजूरी दी गई थी। जाकै बूझ अपणे बड़े बुढ्यातै, गर वे कह देंगे कि गाम के किसी भी एक आदमी ने इसके बणान मै एक धेल्ला भी अपनी आँट तै खर्च किया तो मैं मान ल्यूँगा इसमैं सबका हिस्सा। फेर किसी की निजी जदाद मैं किसी और का दखल हो सकै या नहीं, तनै पता नहीं होगा, तू तो सहर मै पढ़ै हैं, किसी वकील मुख्त्यार तै बूझ लियो। जा अपणी पढ़ाई कर, लीडरी तेरा काम नहीं।" कहकर पिताजी भीतर चले गए।

कुछ देर बाद पिताजी बाहर निकले, उन्होंने देखा कि मंदिर के बाहर निकास द्वार पर बनी हुई छोटी-सी कोठरी में बहुत सारा कूड़ा-कर्कट भरा है जिसे हमारे घर के सामने बनी हुई कूड़ी पर डाला गया था। वे प्रगतिशील कुछ युवक जो ब्राह्मणों को देखकर, दबी आवाज में हाड़ी (हाड़, हड्डी) कह दिया करते थे, चुपचाप कूड़ी पर पड़ा कूड़ा टोकरी में भर-भरकर यहाँ डाल गए थे। पिताजी को क्रोध आया, वे भीतर गए और अपना कुर्ता उतार कर फावड़ा-टोकरा उठाया और उसे टोकरे में भरकर बाहर कूड़ी पर फैंकने लगे। सामने से एक बुजुर्ग किसान कंधे पर फावड़ा रखे आया, उसने देखा तो वह चौंक कर बोला, "दाद्दा, पाँ लगै।"

"सुखी रह लम्बरदार।"

"यू के कर्रे हो, हरफुल्ला नहीं आया, जो तम कूड़ा फैंक रे हो?"

"थारे बालकाँ की गंदगी साफ कर्रा हूँ।" पिताजी बोले।

"के मतलब?"

"यू थारे बालकाँ की करतूत है, कुछ छोरों के साथ टीकम का छोरा आया और कूड़ी तै कूड़ा ठाकै भित्तर गेर गया।"

"ऐसा कर्या उस मादर चोद नै, मिळण दे उस किक्कर (कीकर) के बीज नै, उसकी माँ का...।" एक बढ़िया रूपक घड़ते हुए उसने गाली दी, कीकर का वृक्ष सर्वाधिक निरर्थक वृक्ष है जो किसी काम नहीं आता, हाँ उसका काँटा जरूर स्मरणीय है। इन ग्रामीणों के मुख से इस तरह के सार्थक रूपक, उपगा मन मोह लेते हैं। पिताजी उसकी गालियों के बीच

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एकदम घुसकर बोले, "फेर के हो गया लम्बरदार, अपणे बाळकाँ की गंदगी भी तो साफ करूँ, इनकी करदी तो कौण सा जुलम कर दिया?"

"ना पंडज्जी! ना।" कहकर उसने पिताजी के हाथ से टोकरा छीन लिया और अपने फावड़े से कूड़ा टोकरी में भर-भरकर बाहर फेंक दिया और झाड़ू लगा दी—"चोद्दे बाळकाँ की मत मारी गइ है, सहर पढ़ण के जाण लगें अपणे नै लफटंट (लेफ्टिनेंट) समझण लगे, बड़बड़ करता वह चला गया। पिताजी को इतना अतिरिक्त कष्ट जरूर उठाना पड़ा कि उन्हें फिर स्नान करना पड़ा।

समझ नहीं सका कि 'हाडी' गाली देने के पीछे उनका क्या मनोविज्ञान था? क्या इसलिए तो नहीं कि उन्होंने ब्राह्मणों को गरीबों का खून चूस कर हड्डी चिचोड़ने वाले के रूप में समझा हो? कहीं इसलिए तो नहीं कि कर्मकांड के नाम पर संस्कारों के अंतर्गत आनुष्ठानिक प्रक्रियाओं को समाज पर थोपने का दोषी समझा हो? कह नहीं सकता। बहुत संश्लेषण विश्लेषण करता हूँ—यदि गरीबों का खून चूसने की बात है तो ब्राह्मण सूदखोर तो नहीं हो सकता। जिसके संस्कारों की जड़ें, उसके भीतर इतने गहरे तक घुसी पड़ी हों कि "औरन को धन चाहिए बावरी, वामन को धन केवल भिक्षा" ही उसकी सोच की सीमा रेखा बन जाए। तो उसके पास धन कहाँ से एकत्रित हो सकता है? फिर, नंगा क्या नहाएगा क्या निचोड़ेगा? फिर निष्कर्ष निकालता हूँ कि विवाह संस्कार आदि में नवग्रह पूजन, अन्य विधि-विधानों के निमित्त दक्षिणा ऐंठने का जिम्मेदार है ब्राह्मण, कदाचित् यही मनोविज्ञान है उनका। और इसीलिए ब्राह्मणों के लिए हाडी का रूपक घड़ लिया हो। फिर उत्तर मिलता है कि आखिर उनकी रोज़ी-रोटी का सवाल है, वे करें भी तो क्या करें? मैं सुना करता था, "आए कनागत फुल्ले काँस, बाम्मन कुद्दै नौ नौ बाँस।" तो इसमें शक नहीं कि श्राद्ध पक्ष में ब्राह्मणों की भोजन संबंधी मौज रहती है, शुक्र है परमात्मा का कि अब श्राद्ध पक्ष में, लोग श्राद्ध तर्पण तो करते हैं पर न्यौता खाने वाले ब्राह्मण ढूँढ़े नहीं मिलते। तेरामी पर तेरह ब्राह्मणों की भीड़ जुटाना आज दुष्कर कार्य है।

संस्कारों की मजबूती, मैंने आस्ट्रेलिया में रहते हुए अनुभव की। यहाँ बसे भारतीय भले ही इंडियंस बन गए हों, पर उन संस्कारों से पिंड नहीं छुड़ा सके हैं। वह बात दीगर है कि इन इंडियनों ने अपने संस्कारों

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के विशाल वट वृक्ष को, मॉडीफाई करते-करते, जापानी टेकनीक से बने बोनसाई वटवृक्ष में ढाल, अपने गमले और घर की शोभा बना लिया हो, पर उसका बीज अभी भी प्राणवान है। खैर,

आर्यसमाज प्रेरित, ब्राह्मण विरोध एक आंदोलन का रूप न ले सका, यह मात्र ऊँट के मुँह में जीरा साबित हुआ। यत्र-तत्र छुट-पुट छींटाकशी होती रहती थी और उतनी ही प्रखरता के साथ इस विरोध का प्रतिकार भी दिखाई पड़ जाता था। मैंने एक बात सुनी थी—बड़ौत के इलाके में दो ग्रामीण ट्रेन में बैठे बातें करते जा रहे थे। एक दूसरे से बोला, "अरे बेड़ा गरक हो इन बामणाँ का, सारे देस का सत्यानाश कर दिया, इन हाड़ियों नै तो समाज पत्ताल में पोंचा दिया था, वो तो भला हो म्हारे सुवामी दयानंद का जिसनै डूबते समाज नै बचा लिया।" उनके बराबर में एक ब्राह्मण उनकी बातें सुन रहा था, इतने में ही उसका स्टेशन आ गया और वह गाड़ी से नीचे उतरते हुए बोला, "अरे चौधरी, स्वामी दयानंद थारा माम्मा था, थारा फुफ्फा था, थारा भणेऊ था, कौन था वह? वह भी तो बाम्मण ही था।"

इस प्रकार के ब्राह्मण-विरोध को देख-देखकर मैं कुछ अनमना-सा हो जाता था। आज देखता हूँ कि ब्राह्मण ने शायद अब अपनी निद्रा त्याग दी है, अपनी खोल से बाहर निकलता आ रहा है और जयप्रकाश एसोशियेट्स के संस्थापक जयप्रकाश गौड़ जैसे कुछ ब्राह्मणों ने दीन-हीन ब्राह्मण को सिर ऊँचा करने का सुअवसर प्रदान किया है। राजनीति ने 'जात-पात पूछे नहीं कोई, हरि को भजे सो हरि का कोई' का ढोल जमकर पीटा था, पर जहाँ अपनी लड़की देने का प्रश्न उठता था, उसके समक्ष जाति पहले होती थी, और आज तक है। फिर भी एक परिवर्तन दिखाई दे रहा है। लेकिन लगता है कि पुनर्मूषिका भव की भाँति देश को फिर जातियों में बाँटने का प्रयास किया जा रहा है। अभी समाचार सुना कि अगले वर्ष 2011 तक सरकार, सबसे अपनी-अपनी जाति पूछ कर, हिसाब फैलाएगी कि देश में जातिवार लोगों की संख्या कितनी-कितनी है। माना कि राजनीतिज्ञों को—पीने वाले को पीने का बहाना चाहिए की भाँति कुछ न कुछ उठक-पटक करने की आदत है, पर क्या जाति-गणना कोई सुखद परिणाम ला सकेगी? और कुछ तो नहीं, कुछ जातियों को शायद आंदोलन करने का बहाना जरूर मिल जाएगा।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाज सुधार आंदोलन के समानांतर, स्वतंत्रता आंदोलन भी चल रहा था। हमारे परिवार का ही एक युवक परमा, अपनी बहिन बस्सो के साथ मेरठ जाकर रहने लगा था। ग्राम से कटकर वे दोनों शहर से जुड़ गए थे। कभी-कभी वे दोनों गाँव आया करते थे। बस्सो उर्फ बसंती को मैं बहिन कहा करता था। उनके रहने-सहने के ढंग, बोलचाल के तरीके ने शहर से तादात्म्य स्थापित कर लिया था। बस्सो अच्छी खूबसूरत गौर वर्णा थी, पान चबाती रहती थी। ठीक याद नहीं कदाचित् वे विधवा थी—उनके दो पुत्रियाँ थी। जिन्हें अच्छी शिक्षा दिलाकर उन्होंने बाद में उनकी शादी एक अच्छे परिवार में कर दी थी।

अपने भाई परमा (परमानंद) के साथ बस्सो अपनी दोनों लड़कियों रत्ती और आशा को लेकर आई थी। दोनों लड़कियाँ, अभी किशोरावस्था को प्राप्त नहीं हुई थी, वे हम बच्चों से न घुलती मिलती थी और न ही उतना अधिक बोलती थी, एक दूरी सी बनी हुई रहती थी मेरे और उनके बीच। बस्सो का बात करने का तरीका, प्यार भरा कम और अफसराना अधिक होता था। एक अजीब सा गर्व उनकी आँखों में रहता था। उनके गाँव आने के दो-तीन दिन बाद बसंतपंचमी थी, प्रातःकाल ही परमा ने सफेद पायजामा और बसंती रंग की कमीज पहनी थी। वह साफ-सुथरा, टिप टॉप रहा करता था। उस दिन वह घर से निकला और गाँव का एक चक्कर लगा आया था। थोड़ी देर बाद वह हमारे घर के सामने ही बाग में जैसे ही पहुँचा, वहाँ गाँव के कुछ लोग इकट्ठे हो गए थे। देखते ही देखते थोड़ी सी देर में काफी लोगों की भीड़ इकट्ठी हो गई, उसमें छोटे-छोटे बच्चे भी थे। मैं भी बाग में पहुँच गया। वहाँ खड़े होकर उसने कुछ भाषण सा दिया और मधुर आवाज में एक गाना गाया—

"माँ मेरा रंग दे बसंती चोला, चोला री माँ चोला।
ज़िस चोले को पहन भगत सिंह फाँसी पे झूला।"

ठीक से याद नहीं रहा, कुछ ऐसे ही बोल थे उसके गीत के। मैंने अर्थ लगाया कि बसंतपंचमी के दिन बसंती कपड़े इसीलिए पहने जाते हैं कि उसका नाम बसंतपंचमी है। गीत को समाप्त करने के बाद परमा ने जोर से पुकारा—"भारत माता की जय" सभी ने ऊँची आवाज में 'भारत माता की जय' का नारा लगाया। "अंग्रेजों भारत छोड़ो" गाँव वालों ने भी नारा लगाया। इसके बाद उसने "विजयी विश्व तिरंगा प्यारा, झंडा ऊँचा

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
रहे हमारा'' गाया। और उपर्युक्त नारे लगाकर सभा समाप्त कर दी।

बड़ा होने पर मैंने मनोज कुमार की शहीद फिल्म देखी थी, उसमें वही गाना था जो परमा ने गाया था। मुझे लगा कि मनोज कुमार ने मूल गीत की आत्मा की रक्षा की थी वरना फिल्म वाले तो ऐतिहासिकता की कोई परवाह नहीं करते, उसे चटपटी बनाने के लिए तरह-तरह के मसाले डालकर उसे कुछ से कुछ बना देते हैं। जब मेरठ आकर मैंने सातवीं कक्षा में एडमीशन ले लिया था तो मुझे स्वतंत्रता आंदोलन की उग्रता देखने को मिली थी। सन् बयालीस के आस-पास का समय था। मैं मेरठ के सराय लालदास मुहल्ले की सेठों की गली से, बगल में बस्ता दबाए, घर से निकला। बजाजा बाजार से गुदड़ी बाजार होते हुए मैं पानी की टंकियों के पास पहुँचा। गुदड़ी बाजार से टंकी तक चढ़ाई है। वह स्थान मेरठ का सबसे ऊँचा स्थान है, जहाँ बहुत बड़े आकार की पानी की दो टंकियाँ ईंटों के चार-पाँच फुट ऊँचे पक्के चबूतरे पर रखी हुई थी। मैंने आज तक इतनी बड़ी और ऊँची टंकियाँ नहीं देखी। इन टंकियों में, मेरठ शहर से 13, 14 किलोमीटर दूर पश्चिम में, मेरे गाँव से कोई तीन किलोमीटर पहले, बोहला गंग नहर से कच्ची सड़क के नीचे दबे बड़े-बड़े पाइपों के जरिये, गंगावाटर आता है।

इन्हीं दो टंकियों से सारे मेरठ शहर को गंगावाटर सप्लाई होता था, आज भी होता है। टंकियों के ठीक सामने, पहाड़ी की ढलान जैसा आभास देने वाला सिपट बाजार था, जिसका नाम बाद में सुभाष बाजार कर दिया गया था। इस बाजार के बीच में बाईं ओर बी.ए.वी. हाई स्कूल पड़ता था जो अब इण्टर कॉलेज है। मैं इसी स्कूल में पढ़ता था। मैंने जाकर देखा कि स्कूल बंद है। बाजार में एक अप्रत्याशित हलचल सी है, मुझे इस हलचल में एक मेले जैसा आनंद आया। मैं सुभाष बाजार में नीचे की ओर आगे बढ़ता गया। आगे जाकर बुढाना गेट चौराहे से सीधा जीमखाना ग्राउंड, बच्चा पार्क होता हुआ, मेरठ कॉलेज वाली सड़क पर चल दिया। मैं धीरे-धीरे आगे बढ़ता जा रहा था, चारों ओर से 'भारत माता की जय', 'अंग्रेजों भारत छोड़ो' जैसे नारों की गुंजार मेरे कानों में पड़ रही थी। सड़क की बाईं-दाईं ओर 5-5, 7-7 की टोलियों में आदमी खड़े थे, किसी के हाथ में तिरंगा था, किसी के हाथ में लाठी, किसी के हाथ में एक डंडा, किसी के हाथ में पेड़ की पतली सी टहनी थी। सबके

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भीतर एक आग सी धधक रही थी। सड़क की बाईं ओर त्यागी हॉस्टेल पड़ा, उसके भीतर कुछ लड़के इकट्ठे खड़े देखे, उससे कुछ दूर आगे अब्बू का नाला था, नाला बहुत चौड़ा था जिसकी असली खूबसूरती तेज वर्षा में उसके पानी के ऊपर उठे बहते लेविल को देखने में थी, तब मुझे वह एक बड़ी नदी सा लगता था, मुझे उसे देखकर बहुत अच्छा लगता था। मैंने अब्बू का नाला पार किया और बाईं ओर स्थित मेरठ कॉलेज कैम्पस पहुँच गया। मैंने देखा कि कॉलेज के भीतर अनगिनत छात्र इकट्ठे हैं और कोई भाषण दे रहा था। मेरी कुछ समझ में नहीं आ रहा था। बस भारत माता की जय, अंग्रेजों भारत छोड़ो के नारे सुनाई दे रहे थे और विजयी विश्व तिरंगा प्यारा का गीत सुनने में आ रहा था, मुझे यह सब बड़ा मनोरम लगा। इस प्रकार की उग्र भीड़ मैंने पहले नहीं देखा थी। चूंकि सभी स्कूल कॉलेज बंद हो गए थे इसलिए भी छात्रों की संख्या अत्यधिक थी, बाल, किशोर और युवक ही नजर आ रहे थे, बड़े-बूढ़े कम दिखाई पड़ रहे थे, बाजार सब बंद पड़े थे, देखने में लगता था कि सारा मेरठ शहर घरों से निकल कर सड़कों पर पहुँच चुका है, स्पष्ट लगता था कि आज कुछ होकर रहेगा। जैसे ही मैं मेरठ कॉलेज के भीतर पहले गेट से घुसा और आगे को बढ़ा तो मेरठ कॉलेज के अगले गेट से, एक अंग्रेज पुलिस अफसर, तेजी से घोड़ा दौड़ाते हुए कॉलेज के भीतर घुसा और उसने वर्तमान कॉलेज लायब्रेरी के सामने वाले मैदान में एकत्रित छात्रों की भीड़ में घोड़े को घुसा दिया, छात्र इस प्रकार इधर-उधर दौड़े जैसे मधुमक्खियों के छत्ते पर डला फेंक कर मार देने से वे इधर-उधर उड़ जाती हैं। वह तेजी से घोड़ा लड़कों के बीच घुमा रहा था कि उसका घोड़ा रपट गया और वह धड़ाम से जमीन पर गिर पड़ा, फिर जिस बिजली की सी फुर्ती से वह उठा और उछलकर घोड़े की पीठ पर कूद पड़ा, वह दृश्य मेरी आंखों के सामने, आज भी साकार है। उस अंग्रेज के पीछे-पीछे पुलिस टुकड़ी आ गई थी। जैसे ही वह नीचे गिरा था, छात्रों की भीड़ उस पर टूट पड़ने को लपकी और उसने अपनी कमर में लटकी पिस्टल निकाली और हवाई फायर करते हुए कॉलेज के बाहर भाग गया, पुलिस टुकड़ी भी उसके पीछे-पीछे भाग गई। मुझे 'भाग गया स्साला', की आवाज सुनाई पड़ी। एक कह रहा था, "बहणचोद बंदर की औलाद, बच गया।" छात्रों के मुँह पर खिलखिलाहट और हर्ष साफ दिखाई दे रहा था। वे ऐसे प्रसन्न

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिख रहे थे, मानो उन्होंने सचमुच अंग्रेजों को भारत से मार भगाया हो।

कॉलेज में आन्दोलन का उफान शांत हो गया। मैं वापस घर की और उसी मार्ग से वापस लौटने लगा, यत्र-यत्र वैसी ही हलचल दिखाई पड़ रही थी। चलते-चलते मैं बुढाना गेट से सिपट बाजार होता हुआ टंकियों की ओर बढ़ा, इस बार मुझे वहाँ बाजार में भीड़ और हलचल, अपेक्षाकृत काफी अधिक महसूस हुई। जैसे ही मैं टंकियों के पास पहुँचा पीछे से भीड़ भागी चली आ रही थी, पीछे-पीछे घुड़सवार पुलिस दौड़ रही थी, गोली चलने की एक-दो बार आवाजें भी सुनाई पड़ी, सड़क के दोनों ओर भागते-भागते लोग पुलिस टुकड़ी पर ईंट-पत्थर फेंक रहे थे, मैंने भी दो-एक ईंट-रोड़े हाथ में उठा लिए थे, और अपनी पूरी ताकत से एक घुड़सवार की ओर फेंके और मैं आगे को भाग लिया, कदाचित् मेरा निशाना ठीक लगा था, एक पुलिस वाले के मुँह पर रोड़ा जा लगा था और टंकी के बराबर के स्थित शर्मा होटल में घुसकर मैंने जैसे ही खटाक से दरवाजा बंद किया तो दरवाजे की खटाक की ध्वनि के साथ ही दरवाजे में एक गोली लगने की जोर की आवाज मेरे कानों में पड़ी। मेरी साँस नीचे की नीचे, ऊपर की ऊपर रह गई।

आज सोचता हूँ कि मैं शर्मा होटल से दरवाजे के भीतर एक सेकिंड भी देर से घुसा होता तो गोली निश्चित ही मेरे आर-पार हो गई होती, और फिर मेरा नाम भी देश की स्वतंत्रता के लिए शहीद होने वालों की सूची में अंकित हो गया होता, यह किसने देखा था कि गोली पीठ पर खाई थी या सीने पर। अपने एक पुत्र को शहीद कर देने के उपलक्ष्य में कदाचित् मेरे पिताजी को भी स्वतंत्रता सेनानी जैसा कुछ लाभ मिल गया होता जिसे काफी लोगों ने जाली सर्टिफिकेट बनवाकर, बाद में लाभ उठाए हैं। मेरे ताऊजी का पुत्र लाहौर में कुछ कार्य करने लगा था, उसके आह्वान पर मेरे दो अग्रज लाहौर पहुँच गए थे, दोनों युवा थे। वहाँ उनसे किसी ने कहा कि इन पर्चों को बाजार में जाकर हर व्यक्ति को बाँट आओ। वे हाथ में पैम्फलेटों की गड्डी लिए एक-एक पैम्फलेट आने-जाने वाले व्यक्ति को थमाते जा रहे थे। किसी पुलिसवाले ने उन्हें देख लिया और गिरफ्तार कर लिया। वहाँ उन्हें तीन-तीन मास की सजा हुई। तीन महीने के बाद वे सकुशल घर भाग आए थे, पता नहीं सजा की अवधि इतनी ही थी या माफी माँगकर आए थे! पर उस लाहौर को आखिरी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नमस्ते कर, सही-सलामत घर पहुँच गए थे, जिसके विषय में पाकिस्तान से बेघर होकर आए एक वयोवृद्ध सज्जन से बात हुई—"महाशय जी, आप लाहौर के थे, लाहौर कैसा था?"

"ओए पाश्शाहो जिन्नै लाहौर नईं वेख्या ओ जन्म्याई नहीं, किन्नी चौड़ी-चौड़ी सड़कें थी और लाहौर दा कम्पनी बाग? इत्थे दा (मेरठ का) कम्पनी बाग तों उसके सामने कुछ भी नहीं।" कहते-कहते जो वेदना उनके मुख पर उभर आई थी, उसकी कचोटन से मैं भीतर तक बिंध गया था। सन् पचपन छप्पन के आस-पास मेरे अग्रजों ने उस दुधारू सर्टिफिकेट को प्राप्त करने हेतु प्रयास किए पर वे सफल नहीं हो सके क्योंकि उनके सारे सबूत तो उस लाहौर में ही दफन हो गए थे जिसे गँवाकर हमने स्वतंत्रता प्राप्त की थी।

स्वतंत्रता-प्राप्ति के बहाने, फटाफट देश के सिरमौर बन बैठने की कुछेक चाणक्यों की एषणा की प्यास पंजाबियों ने अपनी आत्मा तक के रक्त को निचोड़ कर बुझाई थी और स्वयं विषपायी होकर अपने अप्रतिम पौरुष से नीलकंठ बन, भारत के कोने-कोने में आज अपनी शौर्य गाथा का नरसिंहा बजा डाला है। राजनीति कभी-कभी कितनी नदीदी और बेसब्री हो उठती है? काश थोड़ा-सा सब्र कर लेते, तो मेरा मानना है कि देर-सबेर स्वतंत्रता तो मिल ही जानी थी, पर वह मूल्य न चुकाना पड़ता जो आज तक चुकाते चले आ रहे हैं, चुकाते रहेंगे, भले ही एक-दो पाकिस्तान और बन जाएँ पर रक्तबीज राक्षस का ज्यूँ-ज्यूँ संहार होता रहेगा त्यूँ-त्यूँ रक्तबीज पर रक्तबीज पैदा होते रहेंगे। डर है कि यह प्रक्रिया कहीं एक दिन भारत नाम को ही न लील जाए।

स्वतंत्रता आंदोलन कवि हृदय छात्रों पर भी हावी हो गया था। मेरठ कॉलेज का एक खूबसूरत नौजवान था ओंकार सिंह निर्भय, उसने अपनी कविता छात्रों की भीड़ के समक्ष सुनाई थी, मुझे उसकी पहली पंक्ति ही याद है—

आई आँधी, आया हल्लन, सन् बयालीस का आंदोलन।

तो मेरे बचपन की ये स्मृतियाँ मेरे जीवनाकाश के दीप हैं, इन्हें क्यू कर बुझाऊँ और इन्हें क्यूँ भूलूँ?

●

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Central Library
185443
Gurukula Kangri (Deemed to be University) Haridwar

क्यूँ भूलूँ?

(ट्यूबवैल में स्नान और करुवे का पानी)

हमारे गाँव की भूमि काफी उपजाऊ है। सिंचाई रूप में तब नहरें हरट (रहँट) और बड़े-बड़े कुएँ ही हुआ करते थे। खेतों की सिंचाई एक दुष्कर कार्य था। सिंचाई की ओर अंग्रेज सरकार का ध्यान, कहने को तो पहले ही पहुँच गया था क्योंकि थोड़ी-थोड़ी दूर पर नहरें निकाली गई थी जिसमें बड़ी नहर से छोटी नहर में और फिर छोटी नहर से बम्बे में पानी आता रहता था। तब नहर के पानी का सिंचाई में विशेष योगदान होता था। फिर भी सारी भूमि तक नहर का पानी पहुँचाना सम्भव नहीं था। इसलिए पूरी भूमि की सिंचाई के लिए ट्यूबवैल लगने शुरू हो गए थे। दूर-दूर तक गाँवों में ट्यूबवैल बन गए थे, बन रहे थे। सभी ट्यूबवैलों को, दसेक फुट चौड़ी कच्ची सड़क से जोड़ा गया था। ट्यूबवैल से, विभिन्न दिशाओं में खेतों से दो ढाई फुट ऊपर उठी हुई, पक्की ईंटों की, गूल बना दी जाती थी जिनमें से पानी होकर खेतों की सिंचाई हेतु बहता था। किसानों को ट्यूबवैल का पानी पटवारी की सिफारिश या ट्यूबवैल आपरेटर की इच्छानुसार मिलता था। मुझे याद है, ट्यूबवैल आपरेटर की बड़ी इज्जत होती थी, वह मनभाए किसानों के भीतर तक घुसा रहता था, यदा-कदा तत्संबंधी किस्से कानों में पड़ते रहते थे—किसानों की फसल लहलहा उठती थी तो आपरेटर का तन-मन। पटवारी की भी उतनी ही आवभगत होती थी। गूल से या रहट से खेत के कोने-कोने में पानी पहुँचाने के काम को 'पानी बलाना' कहते थे। मैं भी, कभी-कभी अपने कमेरे के साथ पानी बलाने चला जाया करता था।

खेत में काम करने वाले नौकर को कमेरा कहते थे। खेतों में काम

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करने गए कमेरे को प्रातः रोटी देने के लिए मैं कभी-कभी खेतों में जाया करता था—उसके नाश्ते में, करीब आधा सेर मिस्से आटे की नमकीन दो रोटियाँ, गुड़ की बड़ी सी डली और एक लोटा मट्ठा होता था। और लोग तो प्याज का गंठा भी देते थे पर हमारे यहाँ प्याज निषिद्ध थी। कभी रोटी जरा सी भी पतली हो जाती थी तो कमेरा शिकायत किया करता था।

ट्यूबवैल बनने से मैं बड़ा प्रसन्न हुआ था। ट्यूबवैल की सड़क, गूल, ट्यूबवैल बिजली के खम्भे देखकर मुझे आश्चर्यजनक सा लगता था। जब पहली बार ट्यूबवैल स्टार्ट हुआ तो उसकी हौदी में कूद कर नहाने में मुझे बड़ा आनंद आया था। हमारे गाँव से पश्चिम की ओर एक चौड़ा काफी गहरा दगड़ा, पटवारी के बाग के बराबर से गुजरता हुआ, दूसरे गाँव हींडन के निकट उखलीना जाता था। दगड़े के दाईं ओर ट्यूबवैल था और बाईं ओर के खेतों में पानी पहुँचाने के लिए, दगड़े के दोनों ओर चौड़ी गहरी, एक-एक हौदी बनी हुई थी, बाईं ओर की हौदी में पड़ता ट्यूबवैल का पानी, दगड़े के काफी नीचे हुए दबे हुए एक गोल पाइप से होता हुआ दाईं ओर की हौदी से होते हुए, ऊपर आकर गूल के रास्ते खेतों में पहुँचता था। जिधर से पानी नीचे से, ऊपर की ओर आता था मैं अपने से दुगुनी गहरी हौदी में छलाँग लगाता, जमीन में पैर लगते और जरा सा ऊपर उचकते ही मैं एक ही झटके से ऊपर उठ आता था। इतना ज्ञानी मैं हो चुका था कि यदि भूल से भी मैं ऊपर से गिरते हुए पानी की हौदी में कूद गया होता तो ऊपर आने का सवाल ही नहीं उठता था, वहीं दम घुटकर मेरे प्राण निकल गए होते, क्योंकि ऊपर से गिरते पानी का प्रेशर मुझे ऊपर उठने ही नहीं देता। उसमें छलाँग लगा-लगा!कर घंटों नहाने में जो आनंदानुभूति होती थी वह मुझे अपने मेरठ कॉलेज के विक्टोरिया पार्क स्थित भव्य स्वीमिंग पूल तक में कभी नहीं हुई।

ट्यूबवैल की सड़क को हम बिजली की सड़क कहा करते थे। मैं महीने में दो-चार बार मोटे से तार से घेरा चलाता हुआ, एक ही साँस में अपने गाँव से चार किलोमीटर उत्तर की ओर रासना गाँव पहुँच जाता था, रासना से पहले एक बहुत चौड़ा नाला पड़ता था। नाले के इस पार तीन सज्जनों ने मिलकर एक संस्था बनाई थी जिसे आश्रम कहते थे। भगवा वस्त्र धारी अनुरागी जी, मिट्ठनलाल त्रिवेदी और अमनसिंह आत्रेय ये तीनों युवक थे। सभी पढ़े-लिखे देशप्रेमी थे। बाद में श्री अनुरागी जी की

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रेरणा से मेरठ सुभाष बाजार में गाँधी आश्रम जैसी कई संस्थाएँ खुल गई थी जो खादी का व्यापार करती थी, श्री अमन सिंह आत्रेय, मेरठ में एक प्रसिद्ध एडवोकेट बने और श्री मिट्ठन लाल त्रिवेदी ने बुलंद शहर के स्याना कस्बे में एक इण्टर कॉलेज की स्थापना की। शुरू में तो त्रिवेदी जी कांग्रेसी थे, बाद में सोशलिस्ट पार्टी के प्रख्यात नेताओं में उनकी गिनती होने लगी थी और वे उ. प्र. में एम.एल.सी. का चुनाव जीते थे। मुझे याद है कि यदि वे सोशलिस्ट पार्टी में जाने की भूल न करते तो उ. प्र. के अच्छे मंत्रियों में उनकी गणना हुई होती। इन तीनों ने ही वहाँ जंगल में आश्रम की स्थापना की थी। वहाँ शिक्षा देना, चर्खा चलाना, दरियाँ, खेस बुनना तथा कुछ और कुटीर उद्योग चलाये गए थे। बाद में आश्रम का रूप समाप्त हो गया और आज वहाँ एक डिग्री कॉलेज है। मेरे अग्रज श्री विष्णुदत्त भारद्वाज की आरंभिक शिक्षा उसी आश्रम में हुई थी और इसके पश्चात् मैं भी बड़ा होने पर इन सज्जनों से जुड़ा रहा।

तो मैं नंगे पैर घेरा चलाते-चलाते नाला पार कर रासना पहुँच जाता था। वहाँ मेरे ताऊजी की पुत्री चावली की ससुराल थी। हाँफते-हाँफते मैं चावली बहिन के घर पहुँच जाता था। वह चौंक कर कहा करती थी—"अरे अकेल्ला ही भाग आया।"

"हाँ बिब्बी!" मैं बड़ी बहन को बिब्बी कहा करता था। चावली बिब्बी मुझे अपने हृदय से चिपका लिया करती। वे मेरी सहोदरा नहीं थी, अथवा मैं उनका सहोदर नहीं था, मुझे कभी इसका अहसास नहीं हुआ। बिब्बी पर अपना पूर्ण अधिकार समझते हुए मैं अक्सर उनके घर पहुँच जाया करता था। मैंने गाँव में बेटी, बहिन के संबंध-निर्वाह की अद्भुत परंपरा देखी थी। यदि कोई ऐसे गाँव पहुँच जाता था जहाँ उसके गाँव की कोई लड़की ब्याही होती तो उसके घर जाकर, बिना कुछ खाए-पिए उसे एक रुपया देकर, उसके सिर पर हाथ फेर, आशीर्वाद देकर चला आता था। यहाँ तक कुछ लोग इस रिश्ते का निर्वाह इस सीमा तक करते थे कि उस लड़की के घर का ही नहीं, उस गाँव के किसी भी घर का खाना तो दूर, पानी भी नहीं पीते थे और आज वह संबंध-निर्वाह लुप्त हो चुका है। संबंध की इस दृढ़ता को कायम रखने के लिए ही कैसी-कैसी युक्तियाँ, उक्तियाँ घड़ ली गई थीं 'बहिन के घर भाई कुत्ता', 'दीवार खाई आलों ने, घर खाया सालों ने।' संभव है इसके पीछे अपने घर में वधू के घरवालों के हस्तक्षेप

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को नकारने का भाव भी रहा हो, प्रायः देखने में आता है कि जिस घर में बहू के मैकेवालों का दखल बढ़ जाता है, वहाँ अशांति छा जाती है।

बहिन चावली और जीजाजी श्री लक्ष्मीचंद्र शर्मा, जो मेरठ में प्राइमरी स्कूल में अध्यापक थे, अब दिवंगत हो चुके हैं लेकिन उनका पोता, राजेन्द्र, मेरे वर्तमान आवास-स्थान वसुंधरा के निकट राजेन्द्र नगर, साहिबाबाद में रहता है, पंजाब नेशनल बैंक में मैनेजर है। दो ढाई वर्ष पूर्व उसके पुत्र को, राष्ट्रपति ने मरणोपरांत अशोक चक्र से सम्मानित किया था। एक दिन मैं चावली बहिन के पोते राजेन्द्र से मिलने उसके घर गया, जाकर मैंने उसकी कोठी की कॉलबैल बजाई तो वही लड़का जो कश्मीर में आतंकवादियों के साथ मुठभेड़ में वीरगति को प्राप्त हुआ था, बाहर निकला और पूछा, "अंकल आप कौन?" मेरा बात करने का स्टाइल कुछ विनोदात्मक होता है, मैंने कहा, "बेटा हिसाब लगाकर बताना पड़ेगा कि मैं तेरा कौन हूँ? यूँ समझ ले कि तेरे पिताजी के पिताजी, यानी तेरे दादा मुझे मामाजी कहकर पुकारते हैं, मैं तो हिसाब में कमजोर हूँ, तू हिसाब लगाकर देख ले कि मैं कौन हूँ।" सुनकर वह चुप हो गया, शायद रिश्ते का हिसाब फैलाने लगा, जो मेरे आज तक पल्ले नहीं पड़ा—मेरे भानजे का बेटा मुझे बाबा जी कहता है और भानजी का लड़का, नानाजी, जैसे एक जंक्शन से चली विभिन्न गाड़ियाँ कोई उत्तरी, कोई पश्चिमी, कोई मध्य रेलवे आदि नामों से जानी जाती है।

और आज मुझे जहाँ एक ओर उस उभरते नौजवान मिलिटरी अफसर को स्मरण कर हृदय में एक असह्य पीड़ा का अहसास हो रहा है, दूसरी ओर उसकी मिलिटरी आफिसर वीरांगना विधवा को 26 जनवरी को राष्ट्रपति से पुरस्कार लेते टी.वी. प्रसारण में देखा था तो हृदय से गर्वानुभूति मिश्रित एक आह निकली थी। काश! चावली बिब्बी आज जीवित होती तो मातृभूमि की आन पर प्राणोत्सर्ग करने वालों के इतिहास के स्वर्णिम पन्नों पर अंकित अपने प्रपौत्र की छवि निहारते हुए, एक ओर जहाँ उनके आँसुओं की धारा फूट पड़ती वहीं, दूसरी ओर हाल ही में विवाहित अपने प्रपौत्र की शौर्य-गाथा उनके आँसू पोंछ रही होती। ऐसे स्थानों पर मुझे लगता है, 'विधि का लिखा न मेटनहारा' से इंसान को एक सांत्वना मिल जाती है—क्षणांश में क्या से क्या हो जाता है—डूबते को तिनके का सहारा। नंगे पैर, घेरा चलाते बालक विद्याभूषण का मन उड़कर

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डॉ. विद्याभूषण भारद्वाज में जा समाया—क्या वर्तमान कभी अपने अतीत से पीछा छुड़ा पाया है? क्या वर्तमान, अतीत का सापेक्षिक रिश्ता नहीं रहता? मुगल और अंग्रेज भारत के अतीत हैं, पर क्या वे भारत के रक्त में घुल-मिल नहीं गए—पहले आप, पहले आप का लखनवी अंदाज़, ये आपकी ज़र्रा नवाज़ी, ये आपकी तशरीफ रखिए, ये इंशा अल्लाह, ये इरशाद, ये टाई कोट पैंट पतलून, ये लंच, डिनर और भाषा, ये विद्यालय, महाविद्यालय, विश्वविद्यालय, तकनीकी विश्वविद्यालय, ये लाल किला, ताजमहल, पार्लियामेंट हाउस, राष्ट्रपति भवन और उसका मुगल गार्डन, इंडिया गेट की भव्यता, आर्कीटेक्चर की दूरंदेशी का प्रमाण-पत्र, नई दिल्ली की पुरानी चौड़ी-चौड़ी सड़कें आदि, आदि सबूत इस बात के लिए पर्याप्त नहीं हैं? खैर,

मैं, चावली बिब्बी से चिपट उनके हाथ का गर्म-गर्म दूध पीकर घेरा चलातो-चलाते पूरी रफ्तार से नान स्टॉप अपने घर लौट आता था। उस दौड़ भावना के विषय में सोचता हूँ कि जैसे मैं किसी दौड़ प्रतियोगिता में पदक जीतकर आया हूँ। मेरे लिए ये स्मृतियाँ, मेरी अमूल्य निधि हैं।

मार्च, अप्रैल के महीने में जब गेहूँ, चने आदि की, रबी फसल पक जाती थी तो कटाई शुरू हो जाती थी। गेहूँ की छोटी-छोटी पूलियाँ बनाई जाती थी, फिर उन्हें गाड़ी में लादकर किसी एक खेत में जमा कर दिया जाता था जिसे खलिहान कहते थे। हमारा खेत ही हमारा खलिहान हुआ करता था। फिर किसान के जीवन का एक उत्सुकता भरा समय शुरू होता था, लेकिन उसके भीतर ही भीतर एक भय भी छाया रहता था। गेहूँ, भूसा अलग-अलग करने के पश्चात् उसे घर तक पहुँचाने के समय तक किसान का दिल धक्-धक् करता रहता था। उसे डर लगा रहता था कि कहीं इंदर महाराज कुपित न हो जाएं। उसके सारे वर्ष की जमापूँजी, सम्पूर्ण आशा विश्वास, भावी योजनाएँ, बच्चों की ब्याह-शादियों की एक लम्बी सूची उसके मन में फड़फड़ाती रहती थी, वह डरता रहता था कि कहीं असमय ही ओला वृष्टि न हो जाए और उसकी सारी जमा पूंजी न. डूब जाए। एकाध बार मैंने ऐसा होते देखा था।

गेहूँ की पूलियाँ, सूखे खेत में गोल घेरे में फैला दी जाती थीं। फिर तेली के बैल की भाँति, बैलों की जोड़ी को, उन पूलियों पर घुमाते रहना पड़ता था जिसे दाँय चलाना कहते थे। प्रातः सूर्योदय से पूर्व ही गेहुँओं

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को गाहना शुरू कर दिया जाता था, दोपहरी में तेज धूप के कारण बैलों और दाँय चलाने वाले को पेड़ की छाँह में आराम करने का अवसर मिल जाता था। बैलों का पगहा पकड़े-पकड़े मैं, चक्राकार रूप में बैलों के साथ घूमता रहता था। संध्या समय गाहे गए, आधे-अधूरे गेहुँओं को जेली से इकट्ठा कर एक बड़ी सी ढेरी लगा दी जाती थी और ऊपर पल डालकर उसे ढक दिया जाता था ताकि आँधी आदि से वह बची रहे। अगले दिन प्रातः फिर वही दाँय चलाने का कार्य शुरू हो जाता था और इसी प्रकार कई-कई दिनों तक यह कार्य तब तक चलता रहता था जब तक कि भूसा और गेहूँ अलग-अलग न हो जाएँ। रात को उसकी ढेरी बनाकर फिर ढक दिया जाता था। इस प्रक्रिया में लगभग एक सप्ताह लग जाता था। सारे दिन तपते सूरज के अस्त हो जाने पर, थोड़ी ठंडक पड़ जाती थी। घर से रोटी खाकर मैं भी रात को सोने के लिए खलिहान में चला जाता था और नींद आने पर पल से ढकी गेहूँ भूसे की ढेरी पर सो जाता था। ठंडी हवा में रात्रि में उसके ऊपर सोने में जो गहरी और मीठी नींद आती थी वैसी कभी ए/सी कमरे में, स्प्रिंगदार मैट्रेस पर सोने में भी नहीं आई–उसका स्मरण मुझे आज भी रोमांचित करता है। रात को प्यास लगने पर, लू में रखे करुवे का शीतल जल पीने में जिस तृप्ति और आनंद की अनुभूति होती थी, वैसी आज तक कभी नहीं हुई, न फ्रिज के पानी से, न ही कोका कोला आदि किसी पेय से। फ्रिज का पानी तो मैं अभी भी नहीं पीता, घड़े का पीता हूँ, मैंने घड़े का नाम इंडियन फ्रिज रखा हुआ है। कहने को तो यह एक रात की नींद और नींद में प्यास लगने पर करुवे का ठंडा पानी ही तो था, लेकिन वह सब मेरे लिए अनुपमेय है। सोचता हूँ कहीं यह मेरा कोई पूर्वाग्रह तो नहीं? जो भी हो, यह सत्य है कि वह आनंद अद्भुत था, अवर्णनीय था।

कार्तिक मास की देवोत्थान एकादशी से पूर्व किसान प्रायः रबी की बुवाई कर लेते हैं। जब कभी ईख की बुवाई होती थी, वह दिन एक उत्सव का दिन जैसा होता था। बुवाई से पहले खेतों की सिंचाई जुताई भली प्रकार हो जाती थी। उस दिन परिवार के लगभग सभी सदस्य खेत में पहुँच जाया करते थे। अच्छे-अच्छे पके हुए गन्नों की कम से कम दो-दो पोरियाँ दराँती से तिरछी काट ली जाती थी। वह गन्ने का बीज होता था, हर पोरी में गन्ने की आँख आना जरूरी था, पोरी के किनारे पर आँख नहीं

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होती थी, तो वह बीज का काम नहीं करती थी। खेत में हल चलाना शुरू होते ही, उसके पीछे-पीछे चलने वाला व्यक्ति अपने हाथों में पकड़े हुए गन्ने की एक-एक पोरी डालता जाता था, सारे खेत में बीज डाल दिए जाने के बाद उस पर बैलों द्वारा मैड़ा चला दिया जाता था। मैं मैड़े पर बीच में बैठ जाता था, तब लगता था जैसे मैं किसी सवारी में बैठा आनंद ले रहा हूँ। उस दिन गुड़यानी बनाई जाती थी–गुड़यानी, बिना घी के गुड़ आटे का बना एकदम पतला हलवा-सा होती थी, उसे तर्जनी ने चाट-चाटकर खाया जाता था। मेरे बड़े भाई साहब गुड़यानी को अँगुली से चाटते हुए छत की ओर ऊपर को देखकर मुस्कराते हुए कहते थे, "काले कउए वह ना है जो तू समझ रहा है, यह गुड़यानी है।" माँ गुस्से में कहती, "घिन नहीं आती ऐसी गंदी बात कहते।" इसका भावार्थ मैं तब नहीं समझा था, पर गुड़यानी लगती वैसी ही थी। पीली-पीली कढ़ी में पकौड़ी देखकर झट से वे नाक पर रुमाल धरते हुए एक ओर मुँह फेरकर, "उँह, यू के धर दिया माँ मेरे आग्गै?" कहते और दाएँ हाथ की अँगुलियों से उसे तुरंत हटा लेने का संकेत दे दिया करते थे।

आज तक समझ नहीं पाया कि खलिहान के गेहूँ की ढेरी पर सोने में जो आनंद आया, वह अद्भुत आनंद फिर क्यूँ नहीं महसूस हुआ? करुवे के शीतल जल का अनन्य स्वाद फिर क्यूँ नहीं आया? चावली बिब्बी जैसा निश्छल स्नेह और कही से क्यूँ नहीं मिला? ट्यूबवैल की हौदी में छलांग लगा-लगाकर नहाने में जो आनंद आता था, वह बाद में क्यूँ नहीं आया? मानस पटल पर उत्कीर्णित ऐसी स्मृतियों को क्यूँ भूलूँ?

●

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्यूँ भूलूँ?

(कुर्ते के पल्ले में आग और छतरी से कूदना)

बचपन में मेरी बुद्धि बड़ी शार्प थी। कितना बुद्धिमान था, इसकी माप-तोल आगे वर्णित घटनाओं से सहज ही की जा सकती है।

मैं कितना बड़ा था, यह तो मुझे स्मरण नहीं, हाँ इतना स्मरण है कि मैं तगड़ी पहने नंगा फिरा करता था, बाहर निकला तो बहुत हुआ कमीज पहन ली। गर्मियों के दिन थे। नये कपड़े पहनने का बहुत शौक सभी को होता है, मुझे भी बहुत था। तब मैंने नई कमीज पहनी थी, नई कमीज पहने हुए प्रसन्नवदन इधर-उधर घूम रहा था, घर के भीतर ही। दोपहर हो चुकी थी। खाना-वाना खाकर, काम-धाम निपटाकर माँ आराम करने लेट गई थी। थोड़ी देर बाद माँ की आवाज सुनाई दी, ''अरै विद्या!''

''हाँ माँ,'' कहकर मैं माँ की कोठरी में पहुँचा, ''कै है माँ?''

''जा, बलजोर की माँ ते आग लिया।'' तब माचिस का उदय तो हो चुका था, पर उसका प्रयोग नितांत आवश्यकता पड़ने पर ही किया जाता था, इसीलिए प्रायः हर घर में मिट्टी का बना एक हारा होता था जिसे बड़ी-सी कच्ची अँगीठी कहा जा सकता है। लेकिन हारा, अँगीठी की भाँति नीचे से खुला नहीं होता था—काली मिट्टी का बना कोई डेढ़ दो फुट गहरा गोल-गोल होता था, जिसमें उपले सुलगाकर, पकने के लिए दूध आदि रख दिया करते थे। उपलों से बनी राख से हारा शनैः शनैः जब ऊपर तक भर जाता था तो राख निकाल कर उसे खाली कर लिया जाता था। हमारे यहाँ तो नहीं, पर जाटों के घरों में उसी हारे में विशेषतः सरसों का साग राँधा जाता था और दूध भी उस पर ओटाने के लिए रख दिया जाता था। उसमें साग पकता रहता था। हारे का पका साग मैं कभी-कभी किसी पड़ौसन के यहाँ चोरी-छिपे खा लिया करता था क्योंकि उस पर

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बना साग अत्यधिक स्वादिष्ट होता था और उसे खाना हमारे लिए निषिद्ध था। जाटों के घर का साग, मक्का की रोटी आदि खाना भी पड़ौस में होने के कारण, मेरा जाटों से ही संपर्क अधिक था। बहरहाल हमारे यहाँ सरसों का साग, हारे पर न बनकर, चूल्हे पर ही बनता था।

हारे पर साग आदि पकाने के बाद, सुलगता हुआ उपला, राख में दबाकर रख दिया जाता था। बहरहाल हारा हर समय क्रियाशील रहता था, कभी खाली नहीं होता था। आवश्यकता पड़ने पर उस अंगारे को निकाल, चूल्हे में रख उस पर कुछ पतले-पतले तिनके डालकर, फूँक मारकर अग्नि प्रज्वलित कर लिया करते थे। अधिकांशतः सभी लोग हुक्का पीते थे तो थोड़ी-थोड़ी देर में आग की आवश्यकता पड़ती थी, तो हारे में दबा हुआ उपले का अंगार काम आता रहता था, अंगार हारे में से निकालते समय उसका छोटा सा टुकड़ा हारे में छोड़कर उस पर उपले का दूसरा टुकड़ा या पूरा उपला रख दिया जाता था और वह सुलगते-सुलगते अंगारा बन जाता था। इसे फिर राख में दबा दिया जाता था। इस प्रकार घर में हर समय आग रहती थी। कभी-कभी किसी वजह से हमारे यहाँ आग खत्म हो जाती थी तो माँ बराबर के किसी के यहाँ से मँगा लिया करती थी।

तो उस दिन माँ ने मुझे बलजोर की माँ से आग लाने को कहा था। बलजोर सिंह मुझसे कुछ बड़ा ही था, वह ऐसे फुदक-फुदक कर चलता था कि उसे सभी लोग टिड्ढा कहने लगे थे और बाल बच्चेदार होने के बाद तक भी बलजोर टिड्ढा नाम से पुकारा जाता रहा। मैं नई कमीज पहन कर घर के बाहर निकला। कमीज के नीचे मात्र एक तगड़ी ही थी, लंगोटी तक भी नदारद। मेरे घर से तीसरा मकान ही बलजोर का था। जैसे ही मैं बलजोर के दरवाजे पर पहुँचा, वह मुझे बाहर आता दिखाई पड़ा—"अरै टिड्ढे, तेरी माँ है के!" मैंने पूछा।

"भित्तर सो री है।" उसने उत्तर दिया और वह बाहर चला गया। मैं निर्द्वन्द्व भीतर पहुँच गया। किसी के भी घर में बिना इजाजत घुस पड़ना सभी का जन्मसिद्ध अधिकार था। मैंने आवाज लगाई, "अरी आग दे दिए।"

"ले जा हारे मै तै।" वह ऊँघती सी बोली।

"कहाँय मैं ले जाऊँ?"

"ले जा अपणे कुर्ते मै, मनै के ब्यौरा?" कहकर नाराज सी हो गई।

मैंने चिमटा उठाया, राख दबे अंगारे में से एक बड़ा सा टुकड़ा तोड़ा,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कमीज का पल्ला फैलाया और उसमें डाल लिया। कुर्ते में से धुआ निकलता देख राख चढ़े अंगारे को कुर्ते में पकड़े-पकड़े मैं घर की ओर दौड़ा, घर के दरवाजे तक भी न पहुँच पाया था कि कुर्ते में से धुआँ उठाते हुए वह जमीन पर जा पड़ा। मैं डर गया। इतना ज्ञान तो मुझे था कि अंगारे को हाथ से पकड़ोगे तो जल जाएगा, लेकिन मेरी कमीज को भी जला देगा, इतना ज्ञान नहीं था। लिखते-लिखते मुझे ध्यान आया कि प्रकृति कितनी महिमामयी है—उसने पशुओं को अग्नि से डरने का सहज ज्ञान दे दिया पर मनुष्य से कह दिया कि बेटा, तुझे बुद्धि देती हूँ, ज्ञान तू स्वयं अर्जित कर। तो लर्निंग बाई डुइंग, के फार्मूले के तहत पहले हाथ जलाओ, फिर सीखो कि आग पकड़ना खतरनाक है, लेकिन इंसान कितनी बुद्धि अर्जित कर सका? और कर सका तो कितना उस पर अमल कर सका? ज्ञान पर अमल किया होता तो अपने लिए स्वयं ताबूत तैयार कर उसमें अपने हाथों कीलें न ठोकता रहता। जानते हुए भी कि यह तेरे ताबूत की अंतिम कील होगी, अभी भी समय है, सम्भल जा, लेकिन वह बाज नहीं आता और स्वयं कालिदास की भाँति जिस डाल पर बैठता, उसे ही काटने की कोशिश करता है। तो अंगारा मेरी नई कमीज के आर-पार हो गया, स्थिति इतनी बिगड़ चुकी थी कि उसे सिलवाया या रफू भी नहीं किया जा सकता था। मैं घबराया, कुछ नई कमीज के वियोग में, कुछ माँ के भय के कारण। रोता-रोता मैं घर में घुसा, माँ को किस्सा सुनाया तो वही हुआ जिसकी आशंका थी। माँ ने दो-तीन धौल मेरी पीठ पर जमाए और "बाम्मण के बैल" छोटृटी बाल्टी मै गेर के नहीं ल्या सकै था? की पदवी के साथ मेरी पहनी हुई कमीज को उतारा और कमर पर थप्पड़ रसीद करते बोली थी, "जा मूरख फिर नंगा।" किसी को मूर्ख या मूर्ख सिद्ध करने वाले ब्राह्मण-पुत्र को 'बाम्मण का बैल' कह देना आम बात थी। यह मेरी समझ में नहीं आया और आज तक नहीं आया कि ब्राह्मणेत्तर जाति—जाट, बनिए आदि के पुत्र के लिए ऐसा रूपक क्यों नहीं बाँधा गया?

कई रोज तक बारिश होने के बाद सूरज दिखाई दिया पर यत्र-तत्र बादल दिखाई दे रहे थे। मौसम सुहावना था। धरती पर पड़ी रेत जम गई थी, धरती की सारी अकड़ाहट निकल गई थी और वह चर्बी चढ़े पेट जैसी थुलथुली सी हो गई थी। रात के जुगनुओं की टिमटिमाहट और टटीरी भंभीरी की गुंजार लगभग थम गई थी। रात भर बजते, मेंढकों के टर टर

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टर टर, हम तौं...हम तौं, के आर्केस्टा की तान थक कर काफी मंद पड़ चुकी थी। कीड़े-मकौड़ों, केचुओं की बारात सी निकलनी शुरू हो गई थी। इस भय से कि फिर बरसात न हो जाए और कुछ शौक के कारण मैं छतरी लेकर बाहर निकला। पास में ही मेरा हमउम्र और सहपाठी भतीजा सहदेव रहता था। मैंने उसे बुलाया—"अरे सहदेव, चल जाम्मण खाण चलैं।" सुनते ही वह मेरे साथ हो लिया। हम पास के गाँव, चिंदौड़ी जाने वाले दगड़े के साथ-साथ गाँव से बाहर निकले, गाँव की सीमा से बाहर पहुँचते ही दगड़े के दोनों ओर जामुन के पेड़ थे जिन पर मोटी-मोटी, काली-काली जामनें लगी थी। यूँ तो जामुन आप ही टूट-टूट कर जमीन पर गिर पड़ती थी, पर अपने हाथ से डला मार गिराई हुई जामुन उठाकर खाने में कुछ और ही मजा आता था। मैं और सहदेव, पेड़ पर डला फेंक कर जामन तोड़ने की कोशिश करने लगे। पेड़ पर लगे पक्की जामुनों के गुच्छों पर निशाना साधना एक अलग से आनंद का विषय होता था। बरसात के कारण मिट्टी गीली होने के कारण ठोस मिट्टी का डला ढूँढना मुश्किल काम था, इसलिए यत्र-तत्र पड़े हुए ईंट के छोटे-छोटे टुकड़े चुन चुनकर इकट्ठे कर लिए। मैंने महसूस किया कि सहदेव का निशाना मुझसे बेहतर था। मैंने उसी के देखा-देखी निशाना साधा—बाएँ पैर को आगे बढ़ाया, दाएँ हाथ में ईंट रोड़ा पकड़ा, कमर को थोड़ा पीछे झुकाया, ईंट रोड़ा पकड़े-पकड़े दो-तीन बार हाथ को जामुन के गुच्छे पर लगी दाईं आँख के आगे-पीछे करते हुए दाएँ हाथ को पूरी तरह पीछे खींचकर घुटने को आगे मोड़ते हुए पूरी ताकत से जामुन के गुच्छे पर ईंट-रोड़े से निशाना मारा और खड़ाक, पाँच-सात मोटी-मोटी पक्की जामुनें जमीन पर आ गिरी, निशाने की सफलता से मुझे अतीव आनन्द मिला। जामुन जमीन पर टपकते ही मैं उछल पड़ा, तब मन में प्रसन्नता का एक विस्फोट सा हुआ। इस प्रकार हम जीभर बढ़िया-बढ़िया जामुन खाते थे।

हम बैठे-बैठे जामुन खा रहे थे। इतने में ही आकाश में हवाई जहाज की गर्जना सुनी, आकाश में हवाई जहाज उड़ा जा रहा था। जामुन खाना भूल हम उमंग के साथ आकाश में उड़ते हवाई जहाज को देखने लगे—हवाई जहाज उड़ते देख आज भी लोग-बाग ऊपर नजर उठा, उसे देखते हैं, रोज-रोज ही देखते हैं, आज मैं गाजियाबाद के वसुंधरा में रहता हूँ, वह हिंडन एयरपोर्ट के बिल्कुल निकट है, अतः प्रतिदिन हवाई जहाजों की उड़ान देखता रहता

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हूँ। सैनिक वायुयानों की रफ्तार और आवाज तो और भी चौंकाने वाली होती है, भयंकर गड़गड़ाहट के साथ तीर की भाँति पीछे से आकर आगे को सर्र से गुजर जाता है, कभी-कभी क्या अक्सर ऐसा होता है कि नजरें गड़गड़ाहट की ध्वनि पर निशाना मारती है, लेकिन वह आवाज पीछे छोड़ आगे निकल जाता है। तो हम दोनों ने जामुन खाते-खाते हवाई जहाज की गर्जना सुनी और हम उसे देखने लगे, वह आगे दूर भाग गया, नजरों के पकड़ाए में नहीं आया। इतने में ही सहदेव बोला, "विद्या तनै सुण्या है के फोज्जी उप्पर उड़ते हवाई जहाज तै छतरी पकड़ कै कूद पड़ैं?"

"हाँ सुण्या तो है।" मैंने कहा।

तब द्वितीय विश्वयुद्ध का समय था। गाँव में तरह-तरह की चर्चाएँ हुआ करती थी। तब हम नहीं जानते थे कि युद्ध क्या होता है, फौजी क्या होता है। बस इतना याद रहा कि फौजी उड़ते हवाई जहाज से छतरी पकड़ कूद पड़ता है, जाहिर है उसे चोट नहीं लगती होगी, वरना वह क्यों कूदता? बस इतना ही कैलकुलेट किया मेरी बुद्धि ने और निष्कर्ष निकाला कि छतरी पकड़ ऊपर से कूद पड़ना खतरे का काम नहीं। मैंने सहदेव से कहा—"सहदेव, छतरी लेकर तो मैं भी कूद सकता हूँ। इसमें कौण सी बड़ी बात है?"

कहकर मैं छतरी लेकर एक जामुन के पेड़ पर चढ़ गया और ऐसी डाल पर पहुँचा जिसके नीचे केवल भूमि दिखाई पड़ रही थी, उस पेड़ की कोई और शाखा उसके नीचे नहीं थी। पेड़ पर चढ़े-चढ़े सँभलकर मैंने छतरी खोली और उसकी डंडी पकड़ कर नीचे छलाँग लगा दी। छतरी उलट गई और मैं धड़ाम से जमीन पर आ गिरा, मुझे कोई चोट तो नहीं लगी, पर मैं 'अरै मरग्या' जरूर चिल्लाया, कदाचित् किसी भय के कारण ऐसा हुआ हो, कह नहीं सकता, मेरा सौभाग्य था कि वर्षा रानी ने मेरे लिए कठोर भूमि को गुदगुदा बना दिया था।

तो आपने देखा कि मैं बालपन में कितना बुद्धिमान था। आज भी जब कभी मुझे इन दो घटनाओं की याद आती है तो अपनी बुद्धि पर तरस बिल्कुल नहीं आता, उल्टे खिलखिलाते बचपन की शैतानियों में झूम उठता हूँ। बताइए, ऐसी स्मृति-धरोहर की उपेक्षा कैसे करूँ, इन्हें क्यूँ भूलूँ?

●

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्यूँ भूलूँ?

(मिट्टी की गाड़ी और ततैया-संहार)

बचपन में मुझे अजीब-अजीब शौक थे। अजीब तो इसलिए कह रहा हूँ कि मुझे अब उस शौक वाले बच्चे नजर नहीं आते। मैं मिट्टी की बैलगाड़ी, हुक्का, चारपाई और कंडील, तीर-कमान आदि बनाया करता था और जीवित ततैंये को पकड़कर बीच में से दो टुकड़े कर दिया करता था। अब ऐसे शौक वाले बच्चे नजर ही नहीं आते, अब तो उनके गर्भावस्था में पहुँचते ही उनके लिए एक फैंसी, मनमोहक बस्ता लाकर रख दिया जाता है और पैदा होने के बाद, तुरताफुर्ती, उनकी कमर पर लटका दिया जाता है और वह आगे-आगे और माता-पिता पीछे-पीछे सपने बुनते चलते हैं। तब माता-पिता न सपने बुनते थे, न उनके लिए बस्ता लाते थे, करे जो मर्जी आए। इतनी देखभाल जरूर थी कि कभी-कभी टोक दिया करते थे कि यह मत कर, वह मत कर। मैंने एक बार मिट्टी का हुक्का बनाया, पिताजी ने पूछा, "यह क्या है?" "हुक्का!" "हट नालायक, हुक्का पिया करेगा? कुछ और बना ले।" मैंने बैलगाड़ी बनाई, तो पिताजी बोले, "यह ठीक है।" और आज सोचता हूँ कि क्या वे, मेरे बड़ा होने पर गाड़ी हाँकने वाला किसान बन जाने पर उन्हें कोई आपत्ति नहीं होती? निश्चित ही होती, पर वे बैलगाड़ी के प्रति मेरी रुचि को देखकर उसे गले से नीचे उतार सकते थे, पर हुक्का पीना बर्दाश्त नहीं कर सकते थे। फिर भी वातावरण का बड़ा प्रभाव पड़ता है, उनके पाँच पुत्रों में बीच के दो पुत्रों में चोरी-छुपे बीड़ी पीने की आदत पड़ गई थी, शेष तीन धूम्रपान से अछूते थे—मैं, मेरे से बड़े और सबसे बड़े भैया।

घर पर तो पढ़ना-पढ़ाना कुछ होता नहीं था, स्कूल के अतिरिक्त बच्चा अपने खेलकूद आदि के शौक पूरा करता था, आज देखता हूँ कि अपने

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बच्चे की पढ़ाई के पीछे, बच्चे को पागल किए रहते हैं, खुद भी पागल हुए फिरते हैं, खैर इसमें कोई क्या कर सकता है, एक भयंकर बाढ़ में, बहने से, स्वयं को कौन बचा पाया है? तो बैलगाड़ी बनाना मेरा प्रिय क्राफ्ट था जिसे सिखाने वाला गुरु, मेरी अपनी ही बुद्धि होती थी। गर्मियों में तालाब का पानी सूखता-सूखता आगे को बढ़ता रहता था और गीली मिट्टी पीछे छोड़ता चला जाता था। मिट्टी सूखती रहती थी और वह गीली जमीन शनैः शनैः सूख जाती थी और गीली भूमि का वह बड़ा सा टुकड़ा दरारों से अलग-अलग खंडों से विभाजित होता हुआ छोटे-बड़े चतुर्भुजाकारों में बँट जाता था। जैसे एक बड़ा सा संयुक्त परिवार देखते ही देखते टुकड़ों में बँट जाता है। वह काली मिट्टी का रूप ले लिया करता था। गाँव के अनेक नर-नारी उस काली मिट्टी को खोद-खोदकर घर ले जाया करते थे, चूल्हा, हारा, दीवार आदि बनाने के काम लाया करते थे।

मैं एक बड़ा-सा डला निकालता और उसे छोटी-सी टोकरी में भर सिर पर रखकर घर ले आता था। फिर उसे थपकी से कूट-कूट कर बारीक कर लिया करता था। उसमें पानी मिलाता, बारीक-बारीक थोड़ा सा भूसा मिलाकर उसे आटे की भाँति गूँथ लिया करता था, गूँथते-गूँथते जब वह पूरियाँ बनाने योग्य आटे जैसा सख्त और मुलायम हो जाता था तो मैं उसका गोल पिंड सा बनाकर एक ओर रख उसमें से पूरी जैसी बड़ी सी लोई बनाता था, मैंने अपनी राधा कुम्हारी के यहाँ इसी प्रकार मिट्टी को तैयार होता देखा था। लोई को अपनी दोनों हथेलियों से दबा-दबाकर गोल आकार दे उसके बीच में एक पतली लकड़ी को घुमा-घुमाकर एक छेद बना देता था, छेद इतना चौड़ा होता था कि लकड़ी के टुकड़े पर पहिया सरलता से घूम सके। पहियों के सूख जाने पर लकड़ियों के टुकड़ों को जोड़-जोड़कर बैलगाड़ी तैयार कर लिया करता था। फिर उसे रस्सी में बाँध घुमाए-घुमाए फिरता था। कभी-कभी दो बच्चों को बराबर में खड़ा कर उनके कंधों पर लकड़ी के एक मोटे से डंडे को रखकर, जुआ बनाता और दोनों की रस्सी पकड़ कर उन्हें हाँकता था—"चल बेट्टे, चल" कहते हुए उनका पगड़ा आगे-पीछे खींचता था, वे दौड़ने लगते थे, मैं पीछे से दौड़ता हुआ कभी-कभी उनकी पीठ पर हल्की सी कमची मारते हुए "अरै मर ग्या रे?" कह देता था और मैं दगड़े में दौड़ते-दौड़ते थकता नहीं था।

इसी प्रकार मैं चारपाई बनाता था। चारपाई बनाना आसान था। मिट्टी को थेप-थेप कर चौकोर आकार देता और ऊपर से उसके चारों

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोनों पर बराबर की लम्बाई वाले लकड़ी के छोटे-छोटे टुकड़े घुसाकर उसे उलटी ही सूखने रख देता था। लेकिन वह चारपाई किसी काम न आती थी, बस एक मनस्तोष रहता था, मैंने यह चारपाई बनाई है। हाँ गाड़ी बनाना, चलाना अच्छा लगता था। उस वातावरण में मोटर बस तो थी ही नहीं जो मोटर बनाने की प्रेरणा देते। एक बार गाँव से एक बस गुजरी थी। उसे देखते ही बच्चे कौतूहलवश उसके पीछे-पीछे दौड़ रहे थे और उसके टायरों की छाप पर नाक लगाकर सूँघने लगते थे। मैंने भी दगड़े में उसके टायरों के निशान पर नाक लगाई, और पेट्रोल की एक अभूतपूर्व गंध महसूस की थी। अच्छी लगी। बस के आगे कोई बैलगाड़ी आने से मैं बस के पीछे लटक गया, बस ने थोड़ी रफ्तार पकड़ी। मैं पीछे की ओर मुँह करके जैसे ही कूदा, जमीन पर पड़ते ही कई गलमुंडियाँ खा गया, खैर चोट तो नहीं लगी, पर वह मेरे मन से अभी तक नहीं उतरी। मुझे यह ज्ञान नहीं था कि चलती बस से आगे की तरफ मुँह करके कूदना चाहिए। अब भी मैं यदा-कदा ऐसे लोगों को चोट खाए देख लेता हूँ जब वह पीछे की ओर मुँह करके कूदने से सड़क पर गिरकर चोट खा लेता है।

मुझे ततैंया पकड़ने का बहुत शौक था, ततैंए को अपने जाल में कुशलता से फँसा कर उसके बीच में से दो टुकड़े कर दिया करता था। मेरे इस कर्म से माँ परेशान रहती थी, बार-बार चेतावनी देती रहती थी कि "मरे, काट लेगा," कहती हुई मेरी पीठ पर एक धौल जमाती मुझे कंधा पकड़ कर एक ओर को धकेल देती थी, मुझे याद है, अपवाद रूप में भी मुझे कभी ततैंए ने नहीं काटा।

मुझे अपनी आदतों से बाज न आता देख, माँ ने मेरे स्कूल के मुंशीजी से शिकायत की कि "मुंशीजी, विद्या ततैंए बहुत मारता है, इसकी आदत छुड़ाओ।" मेरी पीठ पीछे ही माँ ने मुंशीजी से शिकायत की थी। मैं स्कूल गया। मुंशीजी ने सारी कक्षा के सामने कहा, "तम मै तै कोण है जो ज्यादा ततैंए पकड़ सकै, अपना हाथ ठाओ, उसै इनाम मिलैगा।" सुनते ही मैंने अखाड़े में दंगल जीते हुए पहलवान द्वारा लंगोट घुमाकर अपनी चैंपियनशिप की चुनौती सी देते हुए, पहलवान की भाँति उत्साह से हाथ उठा दिया। मुंशी जी ने कहा, "उरे नै आजा विद्या, मैं झट से मुंशी जी के पास पहुँचा।

मुंशी जी ने पूछा, "बता किस ढाळ पकड़्या करै ततैंए?"

मैंने बताना शुरू किया, "मुंशीजी, मैं जेई, गेहूँ की एक लम्बी सी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नलकी लेकै उसमै घोड़े की पूँछ के लम्बे से बाल नै दोहरा करकै, उसमें गेर कै आर-पार कर लिया और उसका फंदा बना लिया। फेर बाळ के दोन्नों सिरे उँगली और गुंठे में दबाके, पाणी में बैठे ततैंए के पिच्छे ले जाकै उसनै ततैंए के बिच्चोबीच ले आऊँ हूँ और फेर उस फंदे नै उप्पर खींच लूँ, ततैंया उसमें फँस जावे और फड़फड़ाण लगै, बस खटाक तै उप्पर नै खींच दूँ तो ततैंया कट कै जमीन मैं गिर पड़े।

सुनते ही उन्होंने हाथ में पकड़ी हुई कमची, तीन-चार बार सटाक्-सटाक् मेरी पीठ पर जड़ दी, ले तेरा इनाम, मुँह से 'सी' के साथ, "मर ग्या मुंसी जी" निकला और सुनते ही मुंशी जी के मुँह से निकला, "चूहड़े मर ग्या मुंशी जी कहवै।" दो-तीन कमचियाँ अधिक जोर से मारी। "मर ग्या मुंसीजी" बच्चों के मुख से और "चूहड़े की गाली मुंशी जी के मुख से निकलना जैसे दोनों का तकिया कलाम बन गया था। और मेरे "ततैंया संहार कर्म" पर पूर्ण विराम लग गया। फिर कभी ततैंया नहीं मारा और आज तक, दिन भर मेरे चारों ओर फैले ततैंए मुझे डंक मारते रहते हैं पर मैं उनसे डंकित होता रहता हूँ—निरुपाय, असहाय। कहाँ गई ततैंए पकड़ने की मेरी वह निपुणता, कुशलता।

बच्चों को पढ़ाने के अतिरिक्त उनकी गंदी आदतें छुड़ाने की जिम्मेदारी भी मानो मुंशीजी पर ही थी। मुंशी जी का इतना आतंक छाया हुआ था बच्चों पर कि बच्चा, अपनी गंदी आदतों को, मुंशी जी के इशारे से ही छोड़ देता था।

मैं मुंशी जी से पिटकर बैठा ही था कि इतने में, लम्बी-सी दाढ़ी, झुकी हुई कमर, एक पाँयचा ऊँचा, एक नीचा, पाजामा और अंतिम साँस लेता सा कुर्ता पहने, कंधे पर झोला लटकाए डाकिया आया और स्कूल के दरवाजे के बाहर से ही जोर से बोला, "मुंशी जी आदाब अर्ज, मिठाई खिलाओ, एक खुशखबरी लाया हूँ।" मुंशी जी कुर्सी पर न बैठकर मेज पर बैठे थे, बोले, "आओ मियाँ फखरू, के खुशखबरी है?"

"आपकी तनख्वाह बढ़ गई है।" "अच्छा? कितनी हो गई?" मुंशीजी ने प्रसन्नता व्यक्त करते हुए पूछा।

"बारह रुपए महीना।" फखरू मियाँ ने मुस्कराते हुए कहा। सुनते ही मुंशी जी प्रसन्नता से मेज पर बैठे-बैठे ऊपर को उछल-सा गए।

उन्होंने मुझे आवाज लगाई, "उरे आ रे विद्या।" मैं तुरंत उनके पास

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहुँच गया। मुंशीजी ने कुर्ते की जेब में हाथ डाला और इकन्नी निकाल कर मेरे हाथ पर रखते हुए कहा, "जा दया की दुकान तै एक आन्ने के पतास्से ले आ।" चूँकि गाँव में मिठाई के नाम पर गुड़ बताशे ही मिठाई हुआ करते थे, बर्फी जैसी और कोई मिठाई गाँव में उपलब्ध नहीं होती थी, होती भी तो भी बिकती नहीं क्योंकि उसे खरीदने की औकात बहुत कम लोगों में थी। बस, एक विवाह शादी ही ऐसा अवसर होता था जब बर्फी, लड्डू आदि चखने का स्वाद उन्हें मिल जाया करता था। गुड़ और बताशे ने यूँ तो सम्मानीय दर्जा प्राप्त कर लिया है, प्रसाद रूप में ग्रहण कर भक्तजन उसे पुण्य भाव से माथे पर लगाते हैं, भले ही खुशी के अवसर पर बर्फी उसे पछाड़ गई है, पर गुड़ और बताशे अपनी पूजा अभी तक करवाते आ रहे हैं। एक कागज में लिपटे एक आने के बताशों को लेकर मैं स्कूल पहुँचा, मुंशी जी ने फखरू मियाँ को बताशे खिलाए, एक-एक बताशा बच्चों को भी दिया।

आज की पीढ़ी को मेरा यह कथन कदाचित् एक मिथक लगे, पर यह मेरे मानस पटल पर अभी तक एंग्रेव्ड है। सच कहूँ, आज मुझे भी लगता है जैसे यह स्वप्न हो। यह भी मैं दृढ़ता पूर्वक कह सकता हूँ कि जो सुख, संतोष, बारह रुपये मासिक वेतन पाने वाले मुंशी जी के मुख पर दमकता था, वह आज पच्चीस-तीस हजार रुपये मासिक की पेंशन प्राप्त करने वाले प्रोफेसर को भी मयस्सर नहीं। मेरे देखते ही देखते हम कितनी ऊँचाई पर पहुँच गए हैं, पर उन्नति के इस शिखर पर पहुँचने के बाद भी हमें क्या मिला, एक असंतोष, एक बेचैनी, एक हताशा और जीवन की गाड़ी को सही-सलामत खींचते चलने के लिए, दो वक्त की शुद्ध दाल-रोटी के साथ एक गिलास शुद्ध जल को प्राप्त करते रहने की एक अथक निरर्थक खोज!

अपने बचपन में मिट्टी की बैलगाड़ी चलाने का मजा, आज मोटर कार चलाने में भी नहीं आता, और ततैंए पकड़ने की स्मृति मुझे आज भी पुलकित करती है, तथा बारह रुपए मासिक की ऊँचाई तक वेतन वृद्धि में प्राप्त हर्ष, वेतन आयोगों द्वारा बढ़ी हुई तनख्वाह से भी कभी नहीं मिला। आनंददायक बालमन की आनंददायक ऐसी स्मृतियों को क्यूँ भूलूँ?

●

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्यूँ भूलूँ?

(मेरी ननसाल)

मेरा बचपन गाँव में बीता था, तब गाँवों में यातायात के साधन नहीं थे, न ही एक गाँव से दूसरे को जोड़ने वाली सड़कें थी, केवल कच्चे दगड़े ही थे। मेरी ननसाल, मेरे गाँव से कोई लगभग चालीस किलोमीटर दूर, ललियाना गाँव में थी जो आज के चाँदीपुर सैनिक हवाई अड्डे के पास पड़ता है। तब उसका नाम चमरावल था। आज सुनने में आता है कि चाँदीपुर सैनिक हवाई अड्डा, बड़ी-बड़ी सुरंगों द्वारा हींडन एयर फोर्स अड्डे से जुड़ा हुआ है जिसमें पाँच सौ लड़ाकू विमान, उड़ान भरने और शत्रु पर तुरंत आक्रमण करने के लिए हर समय तैयार खड़े रहते हैं। इसमें कुछ सच्चाई इसलिए भी लगती है कि चाँदीपुर हवाई अड्डा देखने में लगता ही नहीं कि यह कोई हवाई अड्डा भी हो सकता है। हींडन हवाई अड्डा दिल्ली के बार्डर पर मोहन नगर के पास स्थित है, इन दोनों हवाई अड्डों में केन्द्रीय विद्यालय हैं।

माँ, दो तीन साल में एक बार अपने मैके जाती रहती थी। यातायात के साधन नहीं थे, जाहिर है कि माँ को पैदल ही अपने मैके जाना पड़ता था। अपने बचपन में मैं, माँ के साथ दो बार अपनी ननसाल गया था। जिस दिन माँ को जाना था, उस दिन माँ ने प्रातः ही उठ कर छह-सात पराँठे बनाए, अचार और शक्कर के साथ एक कपड़े में लपेट, एक पोटली में रख लिए, उसमें माँ ने अपने और मेरे, पहनने के कुछ कपड़े रखे थे। सूर्योदय होते-होते, मैं माँ की अँगुली पकड़े-पकड़े उसके साथ चल दिया। माँ ने पोटली सिर पर रख ली थी। गाँव से दो-तीन किलोमीटर पूर्व की ओर ढ़ढरा गाँव से होते हुए टिमकियाँ गाँव पहुँचे।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टिमकिया मुझे बड़ा सुन्दर लगा क्योंकि वहाँ गाँव से निकलते ही एक ऊँची और बड़ी नहर दिखाई पड़ी जिसे गंगा नहर से निकाला गया था और टिमकिया से एक नहर बाईं ओर और दूसरी दाईं ओर को निकाली गई थी। वहाँ खड़े होकर देखने में वह स्थान तीन-चार नहरों का संगम सा लगता है।

माँ ने बाईं ओर वाली नहर की पटरी पकड़ी और उसके साथ सीधी दक्षिण-पश्चिम की ओर चलने लगी। वह दृश्य मुझे बड़ा मोहक लग रहा था—दाईं ओर नहर बह रही थी और बाईं ओर कभी खेत पड़ते थे, कभी बाग आ जाते थे, हरियाली ही हरियाली थी। पीने के पानी की कोई समस्या नहीं थी, स्थान-स्थान पर रहँट, कुएँ थे और दाईं ओर नहर का पानी तो था ही। मार्ग में दो एक स्थानों पर रुक कर पराँठे खाए, आराम किया और फिर चल पड़े। मैंने अपनी जूतियाँ हाथ में पकड़ ली थी, क्योंकि उन्हें पहने-पहने चलने से पैरों में चीस मारने लगी थी। काफी थक जाने पर मैं कहता, "माँ गोद्दी।" माँ के बस का कहाँ था कि मुझे गोदी उठाकर चलती, मेरा मन समझाने के लिए मुझे कभी-कभी गोदी लेकर दस-पाँच कदम चलती और मुझसे कहती, "बस बेट्टा, माड़ी सी दूर और है।" उठते-बैठते, खाते-पीते, आराम करते माँ आगे बढ़ती जाती थी। जैसे-जैसे मेरी ननसाल नजदीक आती जा रही थी, वैसे-वैसे मेरी नानी याद आती जा रही थी, दो-एक जगह तो मैं रो भी पड़ा था, माँ मुझे दिलासा देती, पुचकारती, दुलारती, बहकाती बढ़ी चली जा रही थी। सूर्यास्त होने को आ गया, हम हींडन नदी के घाट सुराना पहुँच गए। माँ ने उँगली ऊपर को उठाकर मुझे बताया, "देख लाल्ला, वो नदी पार सामी दिखाई दे रा है ना, वह तेरे नाना का गाम है, बस इब तो आ ही पहुँचे। नाव के पुल से गुजरते हुए मैंने महसूस किया जैसे वह हिचकोले से खा रहा है। नदी पार करते ही हींडन की रेती पड़ती थी, जो काफी आगे तक फैली हुई थी। माँ ने जूती निकाल हाथ में पकड़ ली और ललियाने की ओर बढ़ने लगी, रेत पर चलना और कठिन महसूस हुआ। खैर, अंधकार घिरते-घिरते मैं माँ के साथ अपनी ननसाल पहुँच गया। जाते ही गर्म-गर्म दूध पिया, मामी ने खाना बनाया और मैं खाना खाकर बेसुध हो खुर्राटे लेने लगा। माँ का पता नहीं, बतियाते बतियाते वह कब सोई थी। लगभग चालीस किलोमीटर की यात्रा, मेरे जीवन की सबसे लम्बी पैदल यात्रा थी। 20-22

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किलोमीटर की पैदल यात्रा तो मैं मेरठ से गाँव आते जाते अक्सर करता रहता था।

मेरे सबसे बड़े भाई को नानाजी ने गोद ले लिया था। मेरे मामाजी अपने पिता के एक मात्र पुत्र थे। उनका विवाह होते ही उनका देहांत हो गया था। विधवा मामी तब ठीक प्रकार युवावस्था को प्राप्त भी नहीं हुई थी। फिर नाना जी ने मेरे बड़े भाई को विधिवत् गोद ले लिया। वे आयुर्वेदाचार्य थे और लगभग सारी औषधियाँ वे स्वयं ही तैयार किया करते थे, मेरठ के प्रसिद्ध वैद्य रामसहाय उनके गुरु थे, जिनका मेरठ में नौचंदी ग्राउंड के पास महाविद्यालय था जहाँ अब रामसहाय इंटर कॉलेज है।

नानाजी के एक पुत्र और चार पुत्रियाँ थीं—माँ उनमें सबसे छोटी थी। माँ की बड़ी बहिन को मैं मावसी कहा करता था और उनके पति को मौसा जी। मौसी को पंजाबी में मासी कहते हैं जो मुझे अधिक सार्थक और प्रिय लगता है, लेकिन मौसा जी को जब मासड़ जी सुनता हूँ तो मुझे लगता है जैसे किसी ने डला फेंक कर मार दिया हो। वह उतना कर्णप्रिय नहीं लगता। मेरी तीन मौसियों में से मुझे सबसे छोटी मौसी की खूब याद है, मुझे बहुत प्यार करती थी। उनका सबसे छोटा पुत्र अतरसिंह जिसे सब अतरे कहा करते थे, मेरा हमउम्र था। मेरी उससे अंत तक खूब छनती रही। वह दिल्ली में एक सरदार जी की दुकान पर काम करता था। कहने को तो वह दुकान थी पर वहाँ कुछ सामान नहीं बिकता था, मात्र एक आफिस बना हुआ था। वहीं कुछ हुआ करता था, पता नहीं कैसा आफिस था, बाद में उस दुकान में फ्रैंक ब्रदर्स पब्लिशर्स का आगमन हो गया था। फिर अतरे ने मुझे एक दिन बताया कि यह जो भीतर सलवार कमीज वाली बैठी है, यह पंजाब की सुप्रसिद्ध गायिका सुरिंदर कौर है। मैंने उन्हें गुनगुनाते देखा, जितना मधुर कंठ था, उतनी ही सुंदर आकृति भी। उन सरदार जी का दिल्ली के चाँदनी चौक में, एक ओर मैजेस्टिक सिनेमा हाल था दूसरी ओर बंगाली स्वीट्स के बराबर में, एक अच्छा सा रेस्ट्रां था। अतरसिंह उसका मैनेजर था। मैं अक्सर गर्मियों की छुट्टियाँ बिताने मेरठ से दिल्ली आकर अतर सिंह के पास ठहरता। रात को मैजेस्टिक में पिक्चर देखता और वहीं पेड़ के नीचे चारपाई डालकर अतरसिंह के साथ ही सो जाया करता था। प्रातः उठते ही बटर टोस्ट और चाय मिलती थी। कई रोज तक बड़ी मौज रहा करती थी। मेरी छोटी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मौसी, अतर सिंह की माँ, मेरे नाना जी जैसी लम्बी तडंगी थी। सुना था, वे अपनी ससुराल गाधी से बैलगाड़ी में बैठ ललियाने अपने मैके को चली, तो रास्ते में पूरी एक भेली चट कर गई थी।

मेरे नानाजी, मुझे ठीक प्रकार याद नहीं, पर विधवा मामी का खूब ध्यान है। नाना जी प्रसिद्ध संस्कृतज्ञ थे और पहलवान पंडित के नाम से मशहूर थे। उनके घर के सामने एक चौड़ा खडंजा था। मेरे गाँव से कहीं अधिक सम्पन्न ललियाना था। नानाजी के घर के सामने एक मारवाड़ी सेठ हीरालाल की हवेली थी। उनके पिता जी का नाम कदाचित इंद्राज था। उनकी हवेली की भव्यता मेरे मन में आज तक समाई हुई है। एक बहुत ऊँचा मजबूत प्रवेश द्वार, जैसा किले का होता है, उससे आगे बढ़कर एक काफी चौड़ा खुला आँगन, उसके आगे दो-तीन पैड़ियाँ चढ़कर महलनुमा कोठी ऐसी विशाल और वास्तुकला का नमूना, शहर में भी देखने को नहीं मिलता, फिर गाँव में होना तो एक अजूबा ही था। मैंने ऐसा भव्य महल नहीं देखा था। उस गाँव में कई घर मारवाड़ी सेठों के थे। सेठ हीरालाल के यहाँ रुपये का लेन-देन होता था। मुझे बताया गया था कि वे अपने कर्ज को किश्तों में वसूल किया करते थे—दस रुपये उधार दिए उससे एक-एक रुपये महीना, बारह महीनों तक वसूल करते थे। वे अत्यंत ही नम्र और मृदुभाषी थे। उनके बड़े मुनीम मदनलाल बहुत ही सज्जन थे, माँ को बहिन जी कहा करते थे और माँ का बड़ा आदर करते थे। मदनलाल सेठजी के हेड मुनीम थे, दो-तीन मुनीम उनके असिस्टैंट हुआ करते थे, कुछ कारिंदे थे जो बड़े हट्टे-कट्टे होते थे और लाठी लिए गाँवों से अपना रुपया वसूल किया करते थे। सेठ का उक्त व्यापार काफी फैला हुआ था। अपवाद रूप में भी नहीं सुना था कि किसी से उनकी मुकदमेबाजी अथवा नोक-झोंक हुई हो, एक परोपकारी के रूप में वे प्रख्यात थे।

किश्तों के इस व्यापार से ग्रामीणों का बड़ा भला हुआ करता था, उनकी ब्याह-शादी तक, सभी काम ठीक प्रकार पूरे हो जाया करते थे, पैसे के कारण कोई काम रुकता नहीं था। किश्तों का यह व्यापार आज बैंकों में खूब फल-फूल रहा है, आज की शान-शौकत बैंक की किश्तों पर ही टिकी हुई है।

माँ बताया करती थी कि नानाजी को गंगाजी सिद्ध थी। मैंने तो

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखा नहीं। माँ बताया करती थी कि जब वे तन्मय होकर गंगा लहरी का पाठ किया करते थे तो ताँबे की तश्तरी पर लुटिया में भरा जल घूमने लगता था और उछल-उछल कर बाहर निकल आया करता था। माँ ने बताया था कि बाद में वह सिद्धि समाप्त हो गई, क्योंकि उन्हें घमण्ड हो गया था।

एक दिन नानाजी सेठ के यहाँ बैठे थे। नानाजी का बड़ा रुआब था, सेठ की उनके सामने बोलने की हिम्मत नहीं पड़ती थी। किसी बात पर नाना जी ने कहा, "सेठ, तू मेरे सामने क्या बेचता है, तू है क्या? तेरे पास धन का अम्बार लगा है तो क्या हुआ, देख मेरे पास गंगा जी है। मैंने किसी को नहीं दिखाई आज तक, आ तुझे दिखाता हूँ।" कहकर नानाजी ने सेठ का हाथ पकड़ा और अपने घर की ओर ले चले। हाथ-पैर धोकर अपने पूजाघर में गए और कहा, "सेठ बैठ जा और देख मेरा चमत्कार।" नाना जी सस्वर गंगालहरी का पाठ करने लगे, पाठ करते रहे, करते रहे, आखिर वे पाठ करते-करते थक गए, पर गंगा जी नहीं आई। हार कर नानाजी ने कहा, "सेठ मैं तो कंगला हो गया, अब तू ही धनवान है।" और नानाजी के नेत्रों से अचानक आँसू फूट पड़े थे।

सोचता हूँ कि वह अश्रुधारा अपनी सम्पत्ति लुट जाने के कारण थी या अपने अहं पर पश्चात्ताप? सही था या गलत यह मैं नहीं कह सकता लेकिन माँ कहती थी कि हम लोग चुपचाप बैठे-बैठे देखा करते थे जब वे नेत्र बंद कर गंगालहरी का पाठ करते थे। यह सब क्या था, झूठ या सच, इसे मैंने कभी नहीं आँका, न कभी आँकने की कोशिश की। यह अपनी-अपनी आस्था का विषय है, मनोविज्ञान का विषय है और विज्ञान का विषय होने के कारण इसे प्रमाण की आवश्यकता है। यद्यपि प्रमाण कुछ है नहीं, फिर भी इसे असत्य क्यूँ कहूँ? हाँ ऐसे-ऐसे किस्से मैंने सुने अवश्य हैं जिन्हें सुनकर विश्वास नहीं होता—एक तांत्रिक पंडित थे, शराब पिया करते थे, श्मशान में साधना किया करते थे, लेकिन छिप-छिपकर समाज से नजरें बचाकर। एक दिन उन्हें किसी ने शराब पीते देख लिया था। अगले दिन बगल में बोतल दबाए वे प्रातःकाल ही घर से निकल लिए, उस व्यक्ति ने कहा, "पं. जी, शराब की बोतल बगल में दबाए जा रहे हो, आप ऐसा दुष्कर्म कर सकते हो, मैं सोच भी नहीं सकता था।" उन्होंने झट अँगोछे में लिपटी बोतल निकाली और पूछा, "बता भैया,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसमें क्या है?" "इसमें तो दूध है, क्या आप दूध ले जा रहे हैं?" वे बोले, "यह तू निर्णय कर कि क्या है?" सुनी हुई इस घटना के पीछे कोई प्रमाण नहीं है, फिर भी इसे झूठ क्यूँ मानूँ? जयपुर के निकट बालाजी में मैंने देखा है कि किस-किस प्रकार वहाँ हनुमान जी के दरबार में अर्जी लगाई जाती है, किस-किस ढंग से, रोंगटे खड़े कर देने वाले ढंग से प्रेतात्माओं से रोगी को मुक्ति दिलाई जाती है। हो सकता है, यह मनोविज्ञान या अंधविश्वास का विषय हो, अतः इसे स्वीकार करने का विधिसम्मत कोई प्रमाण न हो। पर संगीत की विशिष्ट ध्वनियों को सुन, गाय अधिक दूध देने लगती है, यह तो सर्वस्वीकृत सत्य है। काफी दिनों पूर्व मैंने सुना था कि पं. ओंकारनाथ ठाकुर ने अपने गायन से, अनिद्रारोग से पीड़ित, अंतर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त, एक व्यक्ति को सुला दिया था। माताएँ शिशुओं को लोरी गाकर सुनाती है, कुछ विशिष्ट ध्वनियों को सुन अबोध बालक तक के पैर थिरक उठते हैं, विरह गीतों की सुर लहरियाँ हृदय को निचोड़कर रख देती हैं, सिनेमा दृश्यों में पार्श्व संगीत के इस प्रकार के प्रभावों को हम पर्दे पर देखते रहते हैं—इन सत्यों को कौन नहीं स्वीकारता? क्या है यह सब कुछ? इसी की शोध तो हमारे प्राचीन ऋषि मुनियों ने की थी—चिड़ियों की चहचहाहट, सूर्योदय से पूर्व जितनी मधुर लगती है, उतनी दोपहरी में नहीं लगती, काले घने बादलों में होती हुई तीव्र वर्षा में, बिजली की कड़क जितनी भयावही लगती है, चमकते सूर्य में उससे दुगुनी भारी कड़क भी उतनी भयोत्पादक नहीं लगती। क्यों? इस प्रकार की प्रभावानुभूति से उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि विशिष्ट प्रकार के वातावरण में, विशिष्ट प्रकार के स्वरों के आरोह-अवरोह से उत्पन्न तरंगें, वायुमंडल में एक विशिष्ट प्रकार का कम्पन उत्पन्न करती हैं, तरंगों का पारस्परिक घर्षण होता है और उस घर्षण की तीव्रता पर निर्भर करता है—दीपक जल उठना, वर्षा हो जाना, तानसेन का संगीत इस सत्य का प्रमाण है। संपूर्ण मंत्र-विद्या इसी पर आधारित है। वेद मंत्रों के पीछे, स्वरों के इसी आरोह-अवरोह का सिद्धांत टिका है, राग भैरवी आदि रागों का समय निर्धारण इसे ही दृष्टि में रखकर किया गया है, श्राप वरदान आदि भी इसी पर आधारित हैं।

जब हम संसार भर की सारी गतिविधियाँ टी.वी. के पर्दे पर घर बैठे देख सकते हैं तो धृतराष्ट्र के समक्ष संजय द्वारा महाभारत के आँखों देखे

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हाल प्रसारण पर विश्वास करने से परहेज क्यूँ? गुजरात में, एक वयोवृद्ध व्यक्ति जीवित बैठे हैं जिन्होंने पिछले पचास, साठ वर्षों से अन्न, जल, फल आदि कुछ भी ग्रहण नहीं किया है, और न ही मलमूत्र विसर्जन किया है। बुद्धिजीवी-प्रगतिशीलता, अपनी आँखों से देखे बिना इसे सत्य कैसे मान लेती अतः डॉक्टरों के एक दल ने उन्हें निरंतर पंद्रह दिनों तक अपने निरीक्षण में रखा और उसे मुक्त कंठ से स्वीकार न करते हुए, इतना कहा, "पता नहीं ऐसा कैसे हो सकता है, पर हुआ तो है। जब हम आज के प्रदूषित वातावरण में इस प्रकार के अजूबे को स्वीकार कर सकते हैं तो 3000 वर्ष पूर्व केरल में जन्मे बाबा जी नागराज, योगी बनकर आज भी हिमालय में अजर-अमर हैं, पर क्यूँ नहीं विश्वास कर सकते?

इसी प्रकार मैं सोचता हूँ कि अपने नानाजी के गंगालहरी के सस्वर पाठ के प्रभाव को, क्यूँ न स्वीकार कर लूँ और मैं दृढ़ आस्था विश्वास के साथ इसे स्वीकार करता हूँ। अस्तु,

मैं अपनी ननसाल काफी दिनों तक रहा और चालीस किलोमीटर की पैदल यात्रा पहले की भाँति सम्पन्न कर अपने गाँव लौटा था। नाना जी के वंश की अग्रसरता को फुलस्टाप वहीं लग गया था जब उनके एकमात्र पुत्र का निधन हो गया था और नाना जी ने अपना वंश चालू रखने के लिए मेरे बड़े भैया को विधिवत् गोद ले लिया था, आज वहाँ नाना जी के नाम का कोई चिह्न शेष नहीं है, बस कुछ स्मृतियाँ जीवित हैं, मेरे साथ वे भी समाप्त हो जाएँगी। फिर ऐसी स्मृतियों को मैं क्यूँ भूलूँ?

●

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्यूँ भूलूँ?

(मेरे गाँव की होली)

माना कि बात पुरानी है, पर जिन्दगी में अनेक बातें, अनेक घटनाएँ ऐसी होती हैं जो मन पर छपती नहीं, बल्कि गुद जाती हैं, फिर वे मिटाए नहीं मिटती, भुलाए नहीं भूलती, मृत्यु पर्यंत तरोताज़ा रहती हैं मानों अभी-अभी घटित हुई हों। ऐसी ही घटना कहिए, उत्सव कहिए, मेरे गाँव की होली थी। आज मेरे गाँव में होली किस प्रकार मनाई जाती है, मुझे पता नहीं, न होली पर जाना होता है, न ही मुझे उस विषय में कुछ पता है। प्रतिवर्ष जब होली आती है, तो उस दिन मेरे बचपन की, मेरी गाँव की होली, जरूर आ धमकती है, मेरे नेत्रों के समक्ष।

शहरों में, यूँ तो होली आने का सिग्नल कई दिन पूर्व शुरू हो जाता है, जब चलती रेलगाड़ी के डिब्बों में, दौड़ती हुई बस में, साईकिल, स्कूटर पर चलते हुए व्यक्ति पर, गली में निकलते हुए व्यक्ति के सिर, पीठ पर रंग के, खाली पानी के गुब्बारे आकर हमला बोलते हैं। लगभग 40-50 वर्ष पूर्व, मेरठ में जब हम लोग होली मनाते थे तो पिचकारी का प्रयोग करते थे–पिचकारी आज बहुत विकसित हो गई है–पर हमारी पिचकारी से जो रंग व्यक्ति पर पड़ता था, तो व्यक्ति रंग देखकर भागता नहीं था, बल्कि रिक्वेस्ट करता था, भैया एक पिचकारी और मार दो। हम लोग चंदा इकट्ठा कर लकड़ी, टेसू के फूल खरीद लाते थे, सड़क के कोने पर ईंटों का एक बड़ा सा चूल्हा बनाकर उस पर एक कढ़ाव रख दिया करते थे, उसे पानी से भरकर, टेसू के फूल डाल फिर नीचे आग जला दिए करते थे। एक बाल्टी रंग निकाला, तो एक बाल्टी पानी डालकर कढाव को भरा रखा करते थे। गर्म रंग भरी बाल्टी में केवड़े की बूँदें डालते थे–और उस

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रंग की पिचकारी जिस पर पड़ती थी, वह प्रसन्न हो उठता था, महक उठता था और कह उठता था, वंस मोर।

अब कहीं भी ऐसा नहीं दिखाई पड़ता। अब तो रंग देखते ही ऐसे भागते हैं मानो पागल कुत्ता भौं-भौं करता पीछे भाग रहा हो। लेकिन रंग खूब खेला जाता है और साहिबाबाद रहते हुए मुझे प्रायः एक कष्ट जरूर झेलना पड़ता था। ब्रजभाषा-भाषी मेरे एक प्रिय मित्र जो मेरी बहुत इज्जत करते हैं, होली के दिन साल भर दी गई अपनी इज्जत को भूल जाया करते थे। प्रायः सभी लोग दोपहर दो बजते-बजते रंग खेलना छोड़ रंग धोना शुरू कर देते थे, जो चेहरे से कई-कई दिनों तक नहीं उतरता था। लेकिन मेरे मित्र सायंकाल तक यूँ ही रँगे-पुते बैठे रहते थे और चुपचाप किसी बच्चे को भेजकर यह पता लगवा लिया करते थे कि प्रो. साहब नहा लिए या नहीं। जैसे ही मैं नहा-धोकर नये वस्त्र पहन लेता था, तो दरवाजा खटक पड़ता था—"प्रो. साहब?" "जी कौन? "अरे पुनीत! आओ, आओ!"

"होली तो मिल जीजिए।" कहते ही उनकी टोली के दो-एक और संभ्रांत लोग मुट्ठी में गुलाल लिए आते और बिना किसी लिहाज के मुझे फिर काले-पीले लाल हो रंगों से पोत देते थे—तभी अचानक ही रंग बोछारे होने लगती थी और कई बाल्टी रंग से मुझे रंग दिया जाता था, मैं मुँह सा बनाता था, "पर बुरा न मानो होली है" के नारों के बीच मेरी याचना अनसुनी रह जाती थी! पुरुष ही नहीं स्त्रियाँ भी पीछे नहीं रहती थी और मिसेज त्यागी की तो पूछो ही मत, सारे साल नजर नीचे किए वह लजाती रहती थी, पर होली के दिन उनकी लज्जा मानो कोई अपहृत कर ले गया हो—कितनी सभ्य, सुंदर, शालीन सी मिसेज त्यागी को उस दिन न जाने क्या हो जाता था कि अश्लील समझी जाने वाली शब्दावली, जिसका प्रयोग सभ्य लोग आपस में बातें करते भी नहीं करते, वे बेधड़क करती थी—स्त्रियों के साथ नहीं, बढ़े-बूढ़ों, हम वयस्क पुरुषों के साथ भी—मस्ती का एक अजीब सा विस्फोट होता था। दुल्हंडी के दिन। लेकिन जब से अपार्टमेंट कल्चर आई है, वह खिलखिलाहट सिकुड़ गई है, बहुत सीमित हो गई है। मेरे मानस पटल पर एक विचित्र सा प्रश्न सूचक नक्शा खिंच जाता है, ग्रामीण पृष्ठभूमि की वर्ष भर ढकी-ढकी सी स्त्रियाँ, दुल्हंडी के दिन नंगी-सी हो जाती थी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और फ्लैट, अपार्टमेंटीय कल्चर वाली वर्ष भर अधनंगी-सी नारियाँ, ढकी-ढकी सी हो जाती हैं, क्यूँ? खैर, जो भी हो–

इन सबमें से गुजरते हुए भी मुझे अपने गाँव की होली भुलाए नहीं भूलती। होली आते ही मैं आज की होली की मस्ती की तुलना अपने गाँव की पुरानी होली से कर बैठता हूँ–कदाचित् इसके पीछे मेरा एक पक्षपात है कि मेरे गाँव की होली की मस्ती का अभी भी कोई मुकाबला नहीं। होली के उस आकर्षण का आनंद लेने के लिए यौवनावस्था में, मैं प्रायः हर वर्ष गाँव जाता रहा था, जो बाद में छूट गया–गाँव जाने के पीछे एक आस्थानुमा आकर्षण और था जिसे हमारे गाँव में तिलहँडा कहा जाता है, जो हर वर्ष दुल्हैंडी के अगले दिन एक भव्य उत्सव का रूप धारण कर लेता है।

होली के दिन, प्रातः ही माँ, भाभियाँ नहा-धोकर तैयार हो जाती थी और तरह-तरह के पकवान, गुँझिया, बेसन की नमकीन सेवियाँ, मीठे नमकीन शक्कर पारे आदि बनाती थी जिनकी तैयारी तो कई दिन पूर्व ही शुरू हो जाती थी। हम सबके लिए खीर पूरी, कचौरी, पूड़े गुँझियाँ, नमकीन एक आकर्षण का विषय रहता था। शहरों में तो दुल्हैंडी-उत्सव दोपहर तक समाप्त हो जाया करता था पर मेरे गाँव में दुल्हैंडी दोपहर 12 बजे शुरू होती थी। दुल्हैंडी के दिन जो समाँ बँधता था, उसकी स्मृति मुझे आज भी पुलकित करती है। उस समारोह में बेलू नामक एक लड़के का विशेष योगदान हुआ करता था। उसका कंठ बड़ा ही मधुर था और उससे भी मधुर हुआ करता था उसका अभिनय। बड़े-बूढ़े एक दसेक साल के बालक से होली सुनकर और उसे नाचता देखकर मंत्रमुग्ध हो उठते थे, होली के रंग में रँगे हुए नवयुवक बेलू को गोदी उठा लिया करते थे और बेलू उनके कंधों पर चढ़ा हुआ, अपने हाथ और गर्दन इस मोहकता के साथ नचाता था कि सब झूम उठते थे। लेकिन इस दिन का मुख्य आकर्षण हुआ करता था चौ. नाहरसिंह का नृत्य।

चौ. नाहरसिंह एक प्रौढ़ व्यक्ति थे–गंभीर, शांत, शालीन, सबकी इज्जत करने वाले और सबसे इज्जत बटोरने वाले, पतले-दुबले क्षीण काय। हँसी-मजाक तो दूर, किसी को भी उनके मुँह पर पूरे साल मुस्कान नहीं दिखाई पड़ती थी, पर दुल्हैंडी के दिन, पता नहीं उनमें कहाँ से मस्ती फूट पड़ती थी, मानों साल भर वे मस्ती को संजोकर, छिपाकर अपने

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अंतस्तल में कैद रखते थे और दुल्हैंडी के दिन साल भर की संचित संपूर्ण मस्ती, पूरे गाँव पर उँडेल देते थे। मस्ती उँडेलने का उनका अपना एक अंदाज होता था। ताऊ नाहर, चारपाई पर, हुक्के की नै पकड़े हुए, बाएँ घुटने को मोड़कर, दाएँ पैर को उस पर टिका लेट जाते थे और कुछ गुनगुनाते से दाएँ पंजे को आगे-पीछे हिलाते रहते थे, लगता था बहुत मग्न है। गाँव के प्रतिष्ठित समझे जाने वाले कुछ लोग चौ. नाहरसिंह के घेर में जाते थे—"ताऊ नाहर! राम-राम।"

ताऊ नाहर जैसे चौंक पड़ते थे और उठकर बैठ जाते थे—"राम-राम भाई, राम-राम आओ बैट्ठो।" बराबर वाली चारपाई पर लोग बैठ जाते थे—एक नौजवान कह उठता था, "ताऊ उठ चल, साल भर बाद दुल्हैंडी राणी आई है, उसकी आरती उतार।"

"ना भाई ना, इब थक ग्या हूँ, इब बस की नईं रह्या।" ताऊ नाहर मुँह सा बनाकर कहता। "नईं ताऊ, साल भर के त्यौहार की बेइज्जती करैगा? यू कोण सा रोज-रोज आवे है, चल उठ, खड्या हो जा।" ताऊ नाहर इस दिन के लिए बेचैन रहते थे, लेकिन खुशामद दरामद से उठने में कुछ और ही मजा था।

"चलो भाई तम नईं मानते तो चलणाई पड़ैगा।" और वे उठकर चल पड़ते थे। ताऊ उठकर गाँव वालों के साथ मठ पर पहुँच जाते थे जहाँ काफी लोग उनकी प्रतीक्षा में खड़े रहते थे। दूर से उन्हें देखते ही सबके मुँह पर प्रसन्नता तैर जाती थी—"अरै वो आ लिया ताऊ नाहर।" की उत्साहपूर्ण आवाज गूँज जाती थी।

सब लोग जानते थे कि ताऊ नाहर का नाच देखने के लिए कैसा चलता फिरता मंच होना चाहिए। चार-पाँच फुट लम्बा-चौड़ा एक तख्त मँगाया जाता था। ताऊ नाहर तख्त पर सफेद चादर ओढ़कर लेट जाया करता था। हट्टे-कट्टे छह नौजवान जैसे ही तख्त को ऊपर उठाकर कंधों पर टिकाते थे—"राम नाम सत्य है, राम नाम सत्य है," का जोर का एक नारा सा लगता था। फिर एक जोर की आवाज आती थी, "ताऊ नाहर आज के दिन ही मरणा था के तनै? इब नाच कोण दिखावैगा?" सुनते ही ताऊ नाहर चादर उठाकर तख्त पर खड़ा हो जाता था—"अच्छा भई तम कहत्ते हो, तो नईं मरता।" कहते ही होली का जुलूस शुरू हो जाता था। कुछ लोग आगे-आगे होते थे जो होली गाते चलते थे, एक ढोलची

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होता था, ढोल बज उठता था, ढम ढमा ढम ढम—लोग नाचना शुरू कर देते थे, उनके पीछे ताऊ का मोबाइल सिंहासन चलता था, कुछ नौजवान ताऊ के सिंहासन उठाए हुए नौजवानों से कंधा बदल लिया करते थे, जैसे अर्थी ले जाते समय कंधा बदलते हैं। ताऊ तख्त पर चढ़ा, बेसुध होकर नाचना शुरू कर देता था।

पहली बार एक घर के आगे नाहर ने हुकम दिया, "थम जाओ।" सब शांत हो जाते थे, वह उनकी लच्छो भाभी का घर था जिसका मैका भटीपुरे का था। एक कान पर हाथ रखकर, दूसरे को आकाश में लहराते हुए जोर से गाता था—"नार अलबेल्ली, नार अलबेल्ली...भटीपुरे की नार अलबेल्ली ई ई ई" और ढोल बज उठता था। तख्त पर चढ़ा नाहर बेसुध होकर नाच उठता था—मजाल है तख्त एक ओर को जरा सा भी हिचकोले खा जाए, ताऊ के निर्द्वन्द्व नाचने के कारण उसके पैरों की थिरकन, आगे-पीछे झुकते हुए, हाथ-पैर, नेत्र, गर्दन, संपूर्ण शरीर का संचालन ऐसा लगता था मानो बादलों की गड़गड़ाहट के बीच बिजली कड़क जाती है। साल में एक बार ही तो देखने को मिलता था गंभीर नाहर का मस्ती विस्फोट—साथ ही बच्चे, बूढ़े, नौजवान सभी थिरकने लगते थे। ताऊ नाहर फिर जोर से आवाज लगाता—"अरी भाब्भी! बाहर नै लिकड़िया, ओ भटीपुरे वाली भाब्भी! बाहर नै लिकड़िया, आजा तनै रंग मैं डुबा दयूँ।" और फिर कान पर हाथ रखकर जोर से गा उठता था—

"भटीपुरे वाली भाब्भी बाहर लिकड़िया, ना तो तोड़ दयूँगा दरवज्जा,

रंग उप्पर गिरवाले री भाब्भी, तावळी बाहर आज्जा—हो, हो, हो, भटीपुरे की नार अलबेल्ली ई ई ई। सभी को पता था कि भाभी दरवाजा खोलकर रंग डलवाने बाहर नहीं आई तो नाहर दरवाजा तोड़कर भीतर घुस जाएगा और फिर भाभी की जो गति बनेगी, उसे वह सदा याद रखेगी। फिर ताऊ नाहर ने जोर से हुँकार लगाई—"भटीपुरे वाली भाब्भी, मेरी बात सुण" और होली गाने लगा—

"भाब्भी मिट्ठी मिट्ठी है,
पर भैया खट्टा खट्टा।

आ दैवर तै लिपट देखले, देवर कितना मिट्ठा, हो हो, हो भटीपुरे की नार अलबेल्ली ई ई ई। इतने में ही लच्छो भाभी घूँघट निकाले, हाथ में रंग की बाल्टी, लोटा लिए बाहर निकल आई। बाल्टी में एक लोटा

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डुबाया और तख्त पर चढ़े नाहर की ओर ऊपर को फेंका लेकिन लच्छो के लोटे का रंग, तख्त उठाए लोगों के कंधों तक ही पहुँच पाया, ताऊ नाहर सूखा रह गया। वह जोर से हँसा और चिल्लाया, ''भाब्भी रात सोई नईं कै? हात्थाँ की जान कहाँ लिकड़ गई, मनै सुक्खाई भेज्जैगी के? सारी जान भैया पैई खरच कर दी, देवर के लिए ना छोड्डी माड़ी सी भी, रात भैया के साथ गिल्ली-डंडा खेल्ली थी के?'' कहकर ताऊ ने हुक्म दिया, ''अरे तखत तळै नै धर ल्यो।'' तख्त जमीन पर टिका दिया गया। नाहर कूद कर लच्छो भाभी के पास गया और उसी अंदाज में कान पर हाथ रखकर, होली गाई–

''आजा भाब्भी गळै तै लग जा, होळी का त्यौहार है,

फेर ना कहणा सुक्खी रैगी, नाहर तेरे द्वार है। हो-हो-हो–नार अलबेल्ली, नार अलबेल्ली, भटीपुरे की नार अलबेल्ली ई ई ई।'' ढोल जोर से बज उठा, हुज्जूम के पैरों में फिर करंट सा लगा, बेलू किसी के कंधे पर बैठा-बैठा बेसुध होकर नाच रहा था। लच्छो ने रंग भरा लोटा नाहर पर फेंका, नाहर ने बाल्टी कब्जाई और सारी की सारी लच्छो के सिर पर उँडेल दी, नाहर लच्छो में छीना-झपटी शुरू हो गई, नाहर ने भाभी की कोली भर ली, लच्छो ने नाहर को ऐसी टंगड़ी मारी कि पतला-दुबला ताऊ नाहर धड़ाम से जमीन पर चित और लच्छो ने भूलुंठित नाहर की छाती पर सवार होकर आँगन में पड़ी कींचड़ नाहर के मुँह पर लपेट दी। नाहर ने एक जोर की हुंकार भरी और खटाक से उठ खड़ा हुआ, भाभी की कोली भर ली और धर पटका जमीन पर और आँगन में पड़ी कींच से नाहर ने लच्छो का अंग-अंग पोत दिया। सब तालियाँ बजा उठे, ढोल बज उठा और ठहरे जल में अचानक गिर पड़े पत्थर से उठी लहरों की भाँति सारा हुज्जूम थिरक उठा। भाभी ने नाहर की धोती, कुर्ता सब फाड़ डाले। इतने में ही नाहर हँसता हुआ हुंकार उठा, ''ततैंए के छत्ते में हाथ गेर दिया भाब्भी, इब देख नतिज्जा।'' कहकर नाहर ने भाभी के सिर का ओन्ना खींच लिया, भाभी की लाज सिर से उतर गई, फिर बोला, ''ले ल्यूँ बदला लत्ते फाड़न का भाब्भी?'' ''तावळी बोल!'' और नाहर का हाथ भाभी की अँगिया की ओर बढ़ा, ''फाड़ दयूँ तेरी चोल्ली? हाथ जोड़ कै माफ्फी माँग, नईं तो...'' कहकर ताऊ ने अँगिया थोड़ी खींची, लाज की मारी लच्छो डर गई और हाथ जोड़कर बोली, ''ना देवर! यू ना करियो।''

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस पर नाहर बोला, "इबी तैई? इसतै आग्गे भी करूँगा, इबी तो भतेरे लत्ते पहर रखे हैं भाब्भी, सारे के सारे फाड़ूँगा, तेरा लहँगा भी।" लच्छो भाभी भयभीत सी गिड़गिड़ाती सी बोली, "थारे आग्गे हाथ जोड़ूँ देवर, मनैं माफ कर दे, यू ना करियो।" लच्छो भाभी ने माफी माँगी, तब कहीं जाकर नाहर ने लच्छो का पीछा छोड़ा।

और इसी तरह ताऊ नाहर सारे गाँव की भाभियों के साथ होली खेलता था। सभी भाभियाँ उससे चुपचाप होली खेल लिया करती थी। कुछ भाभियों की गति लच्छो भाभी जैसी हो जाती थी। आयु में नाहर से बड़े गाँव के हर व्यक्ति की पत्नी उसकी भाभी होती थी। भाभी जिस गाँव की होती थी, उसी गाँव का नाम लेकर, 'फलाँ गाँव की नार अलबेली' गाया करता था। सूर्यास्त तक नाहर सारे गाँव में होली खेल लिया करता था और–

"होळी आई थी गजर भत खाकै
वो तो गई थी पूँछड़ा ठाकै।"

के साथ होली उत्सव का समापन हो जाता था। दुलहंडी से अगले दिन तिलहँडा मनाया जाता था। मुझे स्मरण नहीं कि मैंने किसी और गाँव में तिलहँडा मनते देखा हो या सुना हो। पूरे वर्ष और कोई उत्सव या मेला ऐसा भव्य नहीं होता था। गाँव के दक्षिण में, बस्ती से थोड़ा हटकर जंगल में, ग्राम देवता का थान बना हुआ है–गुंबदनुमा, चार-पाँच फुट ऊँचा एक मंदिर सा जिसके भीतर कोई मूर्ति प्रतिष्ठापित नहीं है, पूर्व दिशा की ओर उसमें बिना किवाड़ों का एक दरवाजा बना है। एक व्यक्ति बमुश्किल उसमें झुककर प्रवेश कर सकता है। भीतर एक व्यक्ति के बैठने भर की जगह बन पाती है। गाँव के सभी नर-नारी, बच्चे, बूढ़े, जवान प्रातःकाल से ही नहा-धोकर, नये-नये रंग-बिरंगे कपड़े पहन कर, सिरों पर प्रसाद की टोकरियाँ रखे, ग्राम देवता की पूजा को चल देते हैं। संध्या तक आने-जाने वालों की लाइन लगी रहती है। एक-एक कर व्यक्ति उसके भीतर प्रवेश कर दीपक जलाता है और बर्फी, बताशे, गुड़ की भेली, शक्कर, अपनी श्रद्धानुसार प्रसाद रूप में ग्राम देवता पर चढ़ाता है और ग्राम रक्षा के बहाने, अपने-अपने घर की रक्षा की प्रार्थना करता है।

देश और काल की दृष्टि से मेरा गाँव बहुत पीछे छूट गया है–कोई दस हजार कि.मीटर और 85 वर्ष, सिडनी में मनाए जाने वाली होली को

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखते-देखते मैं देश काल की सीमा लाँघ कर फिर अपने गाँव की होली दुलहंडी तिलहंडी में पहुँच गया हूँ जिसके स्मरण से मुँह से बरबस ही निकल पड़ता है–वे दिन भी क्या दिन थे। उन्हें क्यूँ भूलूँ?

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्यूँ भूलूँ?

(चवन्नी का पुरस्कार)

तब मैं प्राइमरी की तीसरी कक्षा का छात्र था। मुंशीजी, एक सौ से ऊपर, चार कक्षाओं को, एक सैनिक अफसर की भाँति कंट्रोल करते थे। मुंशी सुगनचंद जी की एक आवाज से ही, दोनों कमरों में बैठी चारों कक्षाओं में एक सन्नाटा छा जाता था। चूँकि हमारे स्कूल में दूसरा कोई और अध्यापक नहीं था, इसीलिए सभी छात्रों के अध्यापन का भार अकेले मुंशीजी के ही कंधों पर था। मेरे प्रथम गुरु मुंशी सुगनचंद का जीता-जागता रूप मेरे भीतर विद्यमान है। धोती, कुरता, टोपी और पैरों में जूती उनकी वेशभूषा होती थी। दिन में दस-बीस बार, बच्चे की कमर पर पड़ती हुई कमची की सड़ाक के साथ "अरै चूहड़े" की गाली सुनाई पड़ती थी।

मुंशीजी की चाल में एक वैशिष्ट्य था जो हजारों में से शायद किसी एक में दिखाई पड़े। वे छह फुट से ऊँचे, इकहरे बदन के गौरवर्णी, छोटी-छोटी मूँछें धारण किए रहते थे—न महाराणा प्रताप की सी लम्बी-लम्बी और ना ही भौंहों जितनी छोटी-छोटी। मूँछें तब पुरुष के व्यक्तित्व का एक अनिवार्य अंग समझी जाती थी। सदा घूँघट निकालने वाली औरतें भी क्लीन शेव पुरुष को देखकर घूँघट निकालना आवश्यक नहीं समझती थी—"ऊँह इस निमुच्छे तै के घूँघट काढ़णा?" कदाचित् इसीलिए सदी के महानायक अमिताभ बच्चन तक भी मूँछों की प्रशंसा कर उठते थे जब वे नत्थूलाल की मूँछें देखते थे। बड़ा होने पर यदि मैं गाँव में रहा होता तो मुझे भी मूँछें रखनी पड़ती। शहर में छूट थी—कोई मूँछें रखे न रखे उसकी मरजी। रेख फूटने पर कभी-कभी इच्छा होती थी कि ये जल्दी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बड़ी होकर मूँछें बन जाएँ। फिर मूँछें आ जाने पर मैंने तलवार मार्का मूँछें रखी। तब कुछ वैसा फैशन था। आपने कभी सहगल साहब की किसी फिल्म में उनकी तलवार मार्का मूँछों का विज्ञापन देखा होगा—वैसी ही कुछ-कुछ। एक दिन मुझे तलवार की धार बनाने में बड़ी पीड़ा हुई। बाईं तरफ की मूँछ को मध्य से नीचे की ओर घुमाते हुए ऊपर की ओर ले गया, फिर दाईं ओर वाली को वही आकार दिया, शीशे में गौर से देखा कि एक ओर की थोड़ी ज्यादा कट गई है, तो दूसरी ओर वाली को छोटी किया, अब दूसरी वाली छोटी हो गई तो पहली वाली को उसके बराबर तराशने की कोशिश की, वह भी फेल हो गई, मतलब यह कि धार की ताल बिठाते-बिठाते मैदान सफाचट हो गया। भीतर से उत्तर आया, छोड़ यार, सफाचट ही ठीक है, ज्यादा से ज्यादा क्या होगा? कोई घूँघट ही तो न निकालेगी, यह भी कोई घाटे का सौदा नहीं है। रोज़-रोज़ नापित-सेवा खरीदना भी मेरी औकात से बाहर था।

तो मुंशी सुगनचंद की मूँछें मध्यम दर्जे की थी। चाल उनकी बता ही चुका हूँ कि विशिष्ट थी—एकदम सीधे होकर चलते थे पेट थोड़ा आगे, सीना थोड़ा पीछे, बाएँ पैर को आगे बढ़ाकर रखते हुए ऐसा लगता था जैसे पीछे की ओर शरीर को एक झटका सा दिया हो, फिर दाएँ को उसी प्रकार आगे को धरते थे, तब ऐसा लगता था जैसे कदम-दर-कदम अपनी चाल की लगाम को पीछे की ओर खींच रहे हों, लगता था जैसे कोई स्टैचू या रोबो चल रहा हो, शायद उसे दुलकी चाल की संज्ञा दी जा सकती है, इस हेतु मुझे टु द प्वाइंट कोई उपमा नहीं सूझ रही और मेरी कलम की कूँची ने, उसका चित्रांकन करने में हथियार डाल दिए हैं। बस समझ लीजिए कि अपनी चाल से मुंशी जी हजारों की भीड़ में भी पहचाने जा सकते थे। आप सभी जानते हैं कि 'कुम्भकार' कितनी भी कुशलता से शकोरे, कुल्हड़, कुल्हिया आदि बनाए सभी में अभिन्नत्व में भिन्नत्व और भिन्नत्व में अभिन्नत्व विद्यमान है। देखने में सब एक से लगते हैं लेकिन विश्व के अरबों व्यक्तियों में से चश्मा लगाकर, दूरबीन, खुर्दबीन लेकर बीन-बीन कर ढूँढ लीजिए—दो व्यक्ति एक्ज़ेक्टली एक से नहीं मिलेंगे। सब कुछ एक सा मिल सकता है पर चाल और अँगूठा निशानी एक सी नहीं मिलेगी। तभी तो पढ़े-लिखे प्रोफेसर तक को भी अँगूठा लगाना पड़ता है—कम से कम अपनी सर्विस बुक और सेलडीड पर तो अँगूठा

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निशानी मस्ट है।

तो मुंशी सुगनचंद की चाल अद्वितीय थी। स्कूल चालू था—कृपया ग़लत अर्थ न निकाले, मेरा मतलब है बच्चे पढ़ रहे थे और मुंशी जी पढ़ा रहे थे। मैं लक्खू-मन्नू की दुकान से खरीदे गए दस्ते से कापी बनाकर, दवात में कलम डुबा-डुबाकर कापी में सुलेख लिख रहा था। मेरी कोशिश रहती थी कि कापी पर लिखे अक्षर मोती से टँके हो। लिखतें-लिखते नरसल से बनी मेरी कलम टूट गई। मैं मुंशी जी के पास पहुँचा, ''मुंशीजी मेरी कलम टूटगी।'' कहा और कलम उनकी और बढ़ाई। मुंशी जी ने जेब से चाकू निकाला, कलम को बाएँ हाथ की अँगुलियों और अँगूठे के बीच टिकाते हुए केवल तीन बार ऊपर, बाएँ और दाएँ, चाकू चलाकर उसे नुकीला कर दिया और बाईं अँगुलियों से कलम को मेज के कोने पर टिका, दाएँ हाथ से कलम की नोक पर चाकू को तिरछा रखकर हथेली से उस पर एक चोट मारी, फिर कटे हुए अग्रभाग के बीच चाकू की नोक से एक चीरा सा लगा दिया—कलम तैयार। जितनी देर मुझे बताने में लगी इतनी ही देर में कलम तैयार। सभी बच्चों की कलम मुंशी जी ही बनाया करते थे, इसीलिए उनके चाकू की धार बहुत तेज थी। मुंशी जी कलम बनाने में एक्सपर्ट थे।

मैं कापी पर सुलेख लिख रहा था। स्कूल के बाहर एक घोड़ा ताँगा आकर रुका, उसमें से एक सज्जन उतरे, मुंशी जी लबड़-धबड़ दौड़े, उनकी धोती की लाँग खुल गई, उसे पीछे से कमर में खोंसते-खोंसते मुंशी जी बाहर निकले और हाथ जोड़कर बोले, ''डिप्टी साहब नमस्ते।'' डिप्टी साहब ने नमस्ते के प्रत्युत्तर में अपनी गर्दन को नीचे की ओर एक झटका-सा दिया। मुंशी जी ने उनके हाथ से बैग पकड़ा और स्कूल के भीतर प्रविष्ट हुए—आगे-आगे मुंशी जी और पीछे-पीछे डिप्टी साहब एक अजनबी को देखते ही, किसी अंतःप्रेरणा से सभी बच्चे एकदम शांत हो गए और अपनी-अपनी पढ़ाई में लग गए। मुंशी जी ने कुर्सी कीं, ऑलरेडी साफ सीट को हाथ से साफ किया और डिप्टी साहब को झुककर आसन ग्रहण करने की प्रार्थना की। चूँकि कुर्सी एक ही थी, डिप्टी साहब बैठ गए और मुंशी जी हाथ पीछे बाँधे घिघियाए से खड़े रहे।

''और मुंशी जी?'' डिप्टी साहब ने गर्दन ऊपर उठाकर उनकी आँखों में आँखें डाली।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"सब थारी मेहरबान्नी है डिप्टी साहब।" मुंशी जी ने दीन भाव से कहा।

एक लड़के की ओर अँगुली उठाते हुए "जा रे सुमरु एक गिलास पाणी भर ल्या।" चौथी क्लास के ब्राह्मण के एक लड़के से कहा। लड़का पानी लाया पर डिप्टी साहब ने पानी नहीं पिया, हाथ की अँगुलियाँ हिलाकर सधन्यवाद वापस कर दिया।

डिप्टी साहब ने स्कूल का मुआयना करना शुरू किया। टाट-पट्टी पर बैठे बच्चों के सामने से हाथ-पीछे बाँधे धीरे-धीरे गुजरते जाते थे और गर्दन नीचे झुकाकर बच्चों को देखते जाते थे, किसी से कुछ, किसी से कुछ पूछ लिया करते थे। वे मेरे सामने रुके। मैं कापी में सुलेख लिख रहा था, मुझे देखकर मुस्कराए और अँगुली ऊपर को उठा, मुझे खड़े होने का हुक्म दिया। मैं खड़ा हो गया, मेरे सिर पर हाथ फेरते हुए बोले, "बेटे क्या नाम है?"

"विद्याभूषण।" मैंने सही उच्चारण के साथ कहा। मेरे नाम के साथ यही गड़बड़ी थी कि पूरे गाँव में शायद ही कोई ऐसा था जो मेरा सही नाम बोलने में सफल हो सकता था, कदाचित् इसीलिए वे बिद्दा कहकर अपना काम चला लिया करते थे, 'विद्या' का भी सही उच्चारण न हो पाता था उनसे।

फिर डिप्टी साहब ने पूछा, "तेरे पिताजी का नाम?"

"श्री मुरारी लाल शर्मा।" मैंने उत्तर दिया।

"तेरे पिताजी क्या करते हैं, खेती करते हैं?" उन्होंने पूछा।

"बाळकाँ नै संस्कृत पढ़ावैं, साँझ नै गाय भैंस के लिए अपणे खेत मै तै जुवार काट लावैं, फेर गंडास्से तै कुट्टी काट्टैं, गाय भैंस की सान्नी करैं, भैंस का दूध काड्ढ़ै, गाय भैंस तळै पड्या गोब्बर खरपटी तै एक माई नै खींचकै कट्टा करैं, फेर नहा-धोकै सूरज छिपे पिच्छै मंदिर में आरती करैं।"

"तू भी आरती करता है?"

"जी हाँ, सारे घर वाले एक साथ खड़े होकै आरती गावैं, पिताजी घरणावल बजा-बजा कै आरती गावैं, मैं झांझ बजा-बजाकै आरती गाता हूँ।"

"आरती याद है?"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"हाँ जी।"

"गाकर सुनाओ।"

मैं बोला, "सबतै पहलै शिवजी की आरती गावैं—"जय शिव ओंकारा, हरि हर शिव ओंकारा।" मैंने आरती गानी शुरू कर दी। वे बीच में बोले, "दूसरी आरती कौन सी गाते हैं?"

"गा कै सुनाऊँ?"

"हाँ"

"जय अंबे गौरी मैया जय श्यामा गौरी।" एक पंक्ति ही गाया था कि उन्होंने पूछा, "संस्कृत का कोई श्लोक याद है?"

मैंने "या कुंदेंदु तुषार हार धवला" सरस्वती वंदना का पूरा श्लोक सुना दिया।

सुनते ही डिप्टी साहब बड़े प्रसन्न हुए और 'शाबास, जीता रह" का आशीर्वाद दिया और बोले "जरा अपनी किताब दिखा।" मैंने बस्ते में से किताब निकाली और डरते-डरते उनकी ओर बढ़ाई। सारी पुस्तक भीतर से फटी पड़ी थी, बीच के पन्ने के पन्ने गायब थे। वे बोले, "अरे यह क्या, सारी किताब फटी पड़ी है। कैसे पढ़ता है तू?" कहकर वे मुंशी जी की ओर मुखातिब हुए, "मुंशी जी, विद्याभूषण की सारी किताब फटी पड़ी है, यह कैसे पढ़ता है?"

मुंशी जी हैरत में पड़ते से बोले, "हुजूर, मुझे कभी अहसास ही नहीं हुआ कि इसकी किताब फटी हुई है, लड़के जब बारी-बारी से पाठ पढ़कर सुनाते थे तो मैं बीच में ही उसे रोककै अगले बच्चे से कह देता था, "इब आग्गे तू पढ़।" जिब विद्याभूषण का नम्बर आत्ता था तो यह किताब मुँह के आग्गे लगाए लगाए ठीक पढ़ता रहबै था, मनै फेर क्युँक्कर पता चलता?" कहकर मुंशी जी चुप हो गए। फिर डिप्टी साहब ने मुझसे पूछा, "जब मेरी किताब के सारे पन्ने फटे पड़े हैं तो तू पाठ किस तरह याद करता है?"

"मनै सारी किताब याद है।" मैं बोला।

"सारी किताब?"

"हाँ जी।"

"सारी किताब क्यूँ रटी?"

"मनै तो नहीं रटी, आप्पी याद हो ग्यी।"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"पूछूँ?"

"बूझ ल्यो।"

डिप्टी साहब ने एक बच्चे से पुस्तक ली, बीच से खोली और पढ़ना शुरू किया, पढ़ते-पढ़ते रुके और बोले, "आगे बोल।" मैंने फटाफट बोलना शुरू किया और सारा पाठ सुना दिया। डिप्टी साहब हैरत में पड़ गए, मुझे गोदी में उठा लिया, पैंट की जेब में हाथ डाल एक चवन्नी निकाली और मेरी हथेली पर रख दी, "शाबाश बेटे!" मेरे सिर पर हाथ फेरा, "चिरंजीव हो, भगवान तुझे बड़ा आदमी बनाए, यह तेरा इनाम है।" और प्रसन्नवदन मुंशी जी के साथ आगे बढ़े। मुंशी जी डिप्टी साहब से बोले, "डिप्टी साहब! विद्याभूषण उर्दू भी पढ़-लिख लेत्ता है।" सुनते ही डिप्टी साहब फिर मेरी ओर लौटे—"विद्याभूषण तू उर्दू पढ़ लेता है?"

"हाँ जी, पढ़ लेत्ता हूँ।"

"किसने पढ़ाई तुझे उर्दू?"

"किसी ने भी नहीं।" मैंने उत्तर दिया।

"फिर कैसे पढ़ लेता है?"

मैंने बोलना शुरू किया, "मेरे बराब्बर में बुद्धू बैठता है, वह उर्दू पढ़ता-लिखता है जिब वह तख्ती पै बोल बोल के लिख्या करैथा, तो सुण सुण कै मनै याद होग्यी, इसी ढाळ लिखना भी आग्या।"

"सुना सकता है उर्दू के अ, आ इ, ई?" वे बोले।

"अलिफ, बे, पे, ते, टे, से, जीम, चे, हे खे" और सारी एलफाबेट सुना दी। उनके मुँह से फिर 'वाह' निकली, उन्होंने मुझे फिर आशीर्वाद दिया और मुंशीजी की आँखों में आँखें डालकर मुस्कराए।

मेरे सहपाठी बुद्धू ने उर्दू ली हुई थी, लगता है वह मेरा उर्दू सिखाने वाला परोक्ष गुरु था। उसे देखकर मुझे मंडन मिश्र के तोते की याद आ गई जिसे सुने हुए श्लोक कंठस्थ हो गए थे। बुद्धू का पूरा नाम बुद्धप्रकाश था। वह काला-कलूटा और गबदू सा लड़का था, जिसे सभी बच्चे बुंद्धू मकौड़ा कहा करते थे, मैं सोचता हूँ छोटे-छोटे बच्चे भी कैसे-कैसे सुंदर रूपक घड़ लेते हैं। उर्दू तब वैकल्पिक था, लेकिन उर्दू कम ही बच्चे पढ़ते थे।

दोपहर होते-होते डिप्टी साहब का मुआयना खत्म हो गया और वे उसी ताँगे में बैठकर चले गए। मैंने राहत की साँस ली। मैं डर रहा था कि यदि ये संध्या तक स्कूल में ठहर गए और दोपहर बाद गणित में, मेरी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पिटाई होती देखली तो कहीं अपनी चवन्नी वापस न माँग लें और उनकी नजरों में मेरे रूप का वह हाल न हो जाए जो अचानक ही वर्षा से मेकअप धुल जाने के बाद किसी सुंदरी का हो जाता है। गणित में मेरा दिमाग नहीं चलता था, मुंशी जी की कमचियाँ मेरी बाईं-दाईं हथेलियों पर क्रमशः पड़ती रहती और हर कमची के साथ मेरे मुँह से "मर ग्या मुंशी जी", निकलता रहता। कभी-कभी मुझे लगता कि मुंशी जी मेरे मुँह से "मरग्या मुंशीजी" का अर्थ गलत लगाते हुए मुझे ढीठ समझकर जरूरत से ज्यादा तो नहीं मार रहे?

गणित मुझे आज तक परेशान कर रहा है, अभी तक भी मैं उतना ही बुद्धू हूँ। अभी हाल में ही ऐसा हुआ कि मैंने 22 रु. का टोंड दूध का पैकेट खरीदकर 100 रु. का नोट उसके हाथ पर रख दिया, उसने मुझे 68 रु. लौटाए, मैं लेकर चला आया, रास्ते भर हिसाब लगाता रहा, घर पहुँचते-पहुँचते समझ में आया कि उसे 78 रु. लौटाने चाहिए थे। मैं वापस गया, उससे कहा कि 10 रु. कम दिए, उसने बिना किसी हील-हुज्जत के 10 रु. का नोट मेरे हवाले कर दिया। इस प्रकार की घटना मेरे साथ अक्सर होती है। रुपये-पैसे का हिसाब मुझसे कभी नहीं रखा गया। जेब में रुपये रखते समय तो याद रहता है कि कितने हैं, लेकिन दो एक दिनों बाद यदि उनमें से कोई 2,3 सौ निकाल ले तो मुझे पता नहीं चलता, समझ लेता हूँ, इतने ही बचे होंगे, बाकी खर्च हो गए होंगे। हाँ ज्यॉमिति में मेरा दिमाग खूब चलता था। मेरे जमाने में हाई स्कूल की परीक्षा में गणित के 50, 50 अंकों के दो प्रश्न पत्र हुआ करते थे—50 अंक का अंकगणित और बीजगणित का एक प्रश्न पत्र और अकेले ज्यॉमेट्री का 50 अंकों का एक प्रश्न पत्र। मुझे आज तक याद है कि अंकगणित वाले पेपर में मेरे 3 अंक आए थे और ज्योमेट्री वाले पेपर में 45। आज सोचता हूँ कि कहीं अंकगणित से ही उत्तीर्ण होना अनिवार्य होता तो इस जन्म में तो हाई स्कूल पास कर नहीं सकता था। फिर क्या करता? फिर क्या होता? फिर विद्याभूषण कंधे पर हल रखे, बैलों का पगहा पकड़े 'या कुंदेंदुतुषार हार धवला' गुनगुनाकर, माँ सरस्वती को सौतेली, कहकर कोसता रहता। खैर,

डिप्टी साहब की चवन्नी मेरे जीवन का प्रथम पुरस्कार था। उस दिन मैं अत्यधिक प्रसन्न हुआ था। मुझे अच्छे से याद है उन दिनों की चवन्नी की महत्ता। हमारे गाँव से कोई तीन किलोमीटर पश्चिम दक्षिण में हींडन

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नदी के उस पार पुरा महादेव का एक भव्य मंदिर है जिसमें प्रतिष्ठित शिवलिंग के विषय में प्रसिद्ध है कि उसकी स्थापना भगवान परशुराम ने की थी। पुरा से कोई दो किलोमीटर दक्षिण में हींडन के तट पर बालैनी गाँव है—कहते हैं वहाँ महर्षि वाल्मीकि का आश्रम था जिसे देखने में लगता है कि वह अति प्राचीन ऐतिहासिक स्थल रहा होगा। पिताजी हींडन को 'हर नंदी' कहा करते थे। पुरा महादेव पर, हींडन के किनारे, वर्ष में दो बार एक आकर्षक मेला लगता है एक फाल्गुन मास की शिव चतुर्दशी पर और दूसरा श्रावण की शिव चतुर्दशी पर। श्रावण की शिव चतुर्दशी पर हरिद्वार से लाई हुई काँवड़ों का जल चढ़ाया जाता है। मेला देखने जाने वाला हर व्यक्ति उस दिन हींडन में स्नान कर, शिवजी पर जल अवश्य चढ़ाता है। उस दिन भीड़ का यह आलम रहता है कि जल चढ़ाना एक बहुत मुश्किल कार्य समझा जाता था। मेला घूमने के लिए मुझे चवन्नी मिला करती थी। मेले में घूम-घूमकर चाँट-पकौड़ी के पत्ते चाटता, गर्म गर्म जलेबी खाता, झूले में झूलता, बेर खाता, एक बाँसुरी और पीपी खरीदता जिन्हें बजाते-बजाते मैं संध्या तक घर लौट आता था और सारी चवन्नी खर्च नहीं हो पाती थी कुछ पाई, धेले बच जाते थे।

डिप्टी साहब की चवन्नी के पुरस्कार से मुझे आज की चवन्नी की दुर्दशा, स्मरण हो आई। मुझे लगता है आज की चवन्नी 'याद करोगे, याद करोगे, एक दिन हमको याद करोगे' गुनगुनाती चली जा रही है, पीछे मुड़-मुड़कर देखती हुई अँगुलियाँ उठाकर, 'गुड बाय' कहती जा रही है। जैसे वह अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए किसी उचित स्थान की खोज में निकल गई हो और उसने महसूस किया कि तीर्थ स्थान से बेहतर कोई और स्थान नहीं। फलतः वह तीर्थ स्थानों की ओर पलायन कर गई। हरिद्वार पहुँचकर चवन्नी ने चैन की साँस ली, चलो कोई तो हुआ उसे गले लगाने वाला और कुछ नहीं तो मुझे गंगाजी के चरणों में तो जगह मिली। हर की पौड़ी पर मैंने देखा है कि कुछ व्यक्ति हाथ में एक छबड़िया सी लिए, गंगाजी में खड़े-खड़े पैसे से कुछ टटोल रहे हैं, फिर वे गोता लगाते हैं और मुट्ठी भरकर कुछ निकाल लाते हैं, यहाँ उदास सी चवन्नी उनकी मुट्ठी में आ जाती है, फिर उसे बेच दिया जाता है, फिर वह गंगाजी के चरणों में समर्पित हो जाती है, गंगा चरणों से चिपकी चवन्नी को, फिर तोड़ लिया जाता है और खरीद बेचने का यह क्रम चलता रहता है, चलता

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही रहता है—सोचता हूँ, गंगा जी के चरणों में बार-बार समर्पित होने पर भी चवन्नी, आवागमन के चक्र से मुक्त नहीं हुई, अंततोगत्वा वह अपने अतीत को याद कर टसुए बहा रही है।

पुरस्कार की चवन्नी जहाँ मुझे प्रसन्नता देती है दूसरी ओर मुझे एक कचोटन, एक कसक भी देती है—हृदय में करकता हुआ एक काँटा—क्या हुआ मेरी उस स्मरण शक्ति को जिसने पूरी की पूरी पुस्तक मेरे मानस पटल पर चस्पा कर दी थी? प्रभु का तो शुक्रगुजार हूँ कि उसने मुझे एक कौस्तुम मणि थमा दी थी, पर मैं उसका आदर न कर सका, एक उच्छ्वास सहित 'भाग्यं फलति सर्वत्र:' कहते हुए अपना दोष किसी और के मत्थे मढ़ देना चाहता हूँ तो लगता है कि अपने आत्म से बेइमानी कर रहा हूँ, बीज को क्यों दोष दूँ? बीज तो, परमपिता ने मेरी झोली में डाला ही था, मैंने ही उसे न ठीक से बोया, न सींचा, यूँ ही जमीन पर फेंक लहलहाती फसल की आशा में बैठा रहा, थोड़ी-बहुत फसल उगी भी, पर बिजूका बनकर उसकी भी रक्षा न कर सका, खेत के बीच मचान पर खड़ा हो, रही-सही फसल को बचाने के लिए, गोफिए के डले से "हुर्र" की हुंकार के साथ, खेत चुग जाने वाली चिड़ियों को न उड़ा सका, यूँ ही चादर तानकर सो गया और जब आँख खुली—तो चिड़िया चुग गई खेत।

भीतर से आवाज आती है—उठ, खड़ा हो, बीज तेरे पास अभी भी है, खेत जोत, बीज डाल, सिंचाई-गुड़ाई कर, फिर फसल लहलहाएगी पर अब तो,

अंगं गलितं पलितं केशम्।

दंत विहीनं जातं तुण्डम!.... अब लकीर भी तो न पीटी जाएगी क्या फायदा? मेरी बालपन की स्मृति मुझे झंझोड़ती है—"जब मैं तेरे द्वार पर ज्यूँ की त्यूँ खड़ी हुई हर वक्त अपनी उपस्थिति दर्ज कराती रहती हूँ, फिर क्यों हिम्मत हारता है—'हिम्मते मरदां मददे खुदा'।

डिप्टी साहब का बड़ा आदमी बनने का आशीर्वाद, भले ही रंग न लाया हो, आज पुरस्कार की चवन्नी मेरे बचपन का परिवेश, पुरा महादेव का भव्य मंदिर, हींडन नदी पर वहाँ भरने वाला मेला, मेरा चाँट-पकौड़ी खाना, बाँसुरी, पी पी बजाते हुए घर लौटना, सब मिलकर मेरा ओवर हॉलिंग कर देते हैं, फिर ऐसी स्मृतियों को क्यूँ भूलूँ?

●

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्यूँ भूलूँ?

(गंगा स्नान)

तब मैं छोटा सा ही था। मेला ठेला देखने का बहुत शौक था। कदाचित् इसका कारण था मेरी घुमक्कड़ी प्रवृत्ति। यूँ तो मेला आदि देखने का मन तो आज भी बहुत करता है, पर तब मन का मीत तन हुआ करता था और आज तन बेवफाई कर बैठा, बुढ़ापे में धोखा दे गया, क्या किया जा सकता है? पर मन को कुछ न कुछ तो चाहिए, तो बचपन की यादों को बुला-बुला मन को दिलासा दे लेता हूँ जैसे कोई अपने बचपन की फोटो एलबम देख-देखकर अपने मन को बहला लेता है, उसे दुलारता रहता है।

कार्तिक मास का शुक्लपक्ष हो, और मुझे गढ़ मुक्तेश्वर का मेला याद न आए, ऐसा कैसे हो सकता है? वह तो गाहे बगाहे, प्रासंगिक और अप्रासंगिक रूप से बिन बुलाए मेहमान की भाँति चला आता है! मैंने, भारत भर के जितने भी मेले देखे हैं, कुम्भ-मेलों के अतिरिक्त गढ़ गंगा का मेला सबसे विशाल और चित्ताकर्षक लगा। गढ़ मुक्तेश्वर का यह कार्तिक मेला, यूँ तो ठेठ ग्रामीण मेला है पर इसकी देसी ठसक, मेरे मन को आज तक मोहित करती चली आ रही है। मन बावला, मेरे तन की उपेक्षा करते हुए मुझे वहाँ खींच ले चलने के बहाने खोजता रहता है। कोई दसेक वर्ष पूर्व, मैं अपने ड्राइवर को लेकर, गंगा मेला देखने गया था, टेंट किराए पर लेकर, कई रोज वहाँ रहा था, पर वह मजा नहीं आया जो बालपन में– माता-पिता, भाई-भाभी, भतीजे, भतीजी के साथ, गाँव से गढ़मुक्तेश्वर तक कोई 65 किलोमीटर दूर, बैलगाड़ी में बैठकर गया था–आया था।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सबसे बड़े भाई साहब ने जिन्हें हम वैद्य जी कहा करते थे, किसी से गाड़ी माँग ली, बैल हमारे अपने ही थे। बैलगाड़ी, अच्छे खासे बड़े आकार की थी। शुक्लपक्ष की अष्टमी को प्रातः ही उन्होंने गाड़ी में सामान लादना शुरू कर दिया था–गिलास, लौटे, बाल्टी सहित 8, 10 दिनों के लिए पर्याप्त आटा, दालें, गुड़ शक्कर, घी तेल मिर्च मसाले आदि खाद्य सामग्री, बैलों के लिए भूसा चूरी, ढेर सारे उपले, सूखी लकड़ियाँ, रिजाई, गद्दे, ओढ़ने पहनने के कपड़े आदि। भोजनादि से निवृत्त होकर, सभी लोग गाड़ी में सवार हो गए। चूँकि एक बड़े से पाल के नीचे गद्दे, रिजाइयाँ आदि दबे पड़े थे, इसलिए उस पर बैठने में सभी को बड़ा अच्छा लगा। खलुवों की ऊँचाई तक, गाड़ी में सामान भरा हुआ था, हम सब लोग बिना किसी सपोर्ट के बैठे थे ऐसा लग रहा था जैसे किसी बस की छत पर बैठे हों।

''बोल श्री गंगाजी की जय'' के आह्वान के साथ, गाड़ीवान ने बैलों का पगहा पीछे को खींचकर ढीला छोड़ा, बैलों की पीठपर पूँछ के बराबर गुदगुदी करते हुए एक पुचकारी भरी और बोला, ''चल बेट्टे काळे, धोळे।'' पशुओं का भी नामकरण किया हुआ था, उसे उसके नाम से ही बुलाते थे। बैल सरकने शुरू हो गए। पिताजी, वैद्यजी गाड़ी के साथ-साथ पैदल ही गाँव से निकले। हमारा घर, गाँव के एकदम पश्चिम में है इसलिए गाड़ी को सारे गाँव का चक्कर काटते हुए पूर्व दिशा में गढ़ गंगा की ओर जाना था। यूँ तो दो बैलों की दृष्टि से, गाड़ी में भार अधिक नहीं था लेकिन वृद्धावस्था प्राप्त बैलों की शक्ति भी तो उतनी नहीं होती। ओखली में सिर दिया तो मूसलों का क्या डर–की प्रस्तुति शुरू में ही हो गई थी जब पिताजी और वैद्य जी गाड़ी से नीचे चलते-चलते बैलों को आगे को धकेल से रहे थे। घर से निकलते ही बैल गाड़ी जैसे ही गाँव के जोहड़ के बराबर से निकली, गाड़ी का एक पहिया, कुछ गहरे गड्ढे में गिर पड़ा। गाड़ी ने उस ओर एक हिचकौला सा खाया और रिजाई में लिपटी बैठी मेरी हमउम्र भतीजी, सावित्री, रिजाई समेत धडाम से जमीन पर जा लुढ़की। शुक्र है कि वह रिजाई में लिपटी थी और गाड़ी के पहिए तले नहीं आई, जोहड़ के पानी में रिजाई थोड़ी-सी भीग जरूर गई थी। पिताजी के मुख से अचानक निकला–''प्रथमे ग्रासे मक्षिकापातः''। सभी का माथा ठनका। कदम आगे बढ़ाने के लिए जिस साहस की आवश्यकता

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस समय महसूस हुई, उससे कहीं अधिक कदम पीछे हटाने के लिए अपेक्षित थी।

मनुष्य के सामने ऐसी स्थिति प्रायः आती रहती है कि वह चाहते हुए भी पीछे नहीं हटता, एक ज़िद सी उस पर सवार हो जाती है और वह अपनी उस विकट स्थिति से पंगा लेने की ठान लेता है। पिताजी, वैद्यजी दोनों गाड़ी में सवार हो गए। ज्यूँ-त्यूँ गाड़ी ठुमक-ठुमक पग धरती सी अमानुल्लापुर, सतवाई, बोहला पार करती हुई मेरठ शहर पार कर गढ़ रोड़ पर पहुँची, मेरठ में प्रवेश करते ही बैलों को पक्की सड़क का सहारा सा मिला, वे अपने गले में पड़े घुँघरुओं को छम-छम-छम-छम बजाते कुछ आराम सा महसूस करते हुए आगे बढ़ रहे थे। ब्राह्ममुहूर्त हो चुका था, गाड़ी थोड़ा और आगे बढ़ी और आज गढ़ रोड़ पर जहाँ मेरठ मैडिकल कॉलेज है, वहाँ तब कुछ नहीं था, पहुँची। अभी अँधेरा घिरा था। पिताजी तारों को देखकर समय का अनुमान लगा लिया करते थे। उनके आदेश से गाड़ी रोककर सड़क के नीचे कच्चे में खड़ी कर दी गई। सब लोग नीचे उतर गए। आसपास खाली पड़े मैदान में, दिशा मैदान जाने के लिए सब लोग इधर-उधर बिखर गए और हाथ पानी लेने के लिए, पानी की खोज करने लगे। अंधकार में बहता पानी दिखाई दिया, उसमें हाथ धोकर कुल्ला करती एक भाभी बोली, "अरी कैसा कड़वा पानी है, इसमें तो बाँस उठरी है?" तभी पिताजी की जोर की आवाज सुनाई पड़ी—"सँभलकर जाना, यहाँ गहरा नाला है।" सुनते ही भाभी थू थू करने लगी और उबकाई लेती बोली, "हे गंगा मैया! म्हारा इमान भ्रस्ट कर दिया।" लेकिन जो होना था, हो गया, "अब पछताए का होत है?" मन समझाया गया—कोई बात नहीं, भले ही नाला हो पर नाम तो काली नदी है और बहता पानी कभी अपवित्र नहीं होता, हारे को हरि नाम। मुझे याद नहीं सब लोगों ने कहाँ-कहाँ से पानी की खोज की, पर काम चला लिया था।

गाड़ी फिर गंगाजी की ओर सरकने लगी। नौ दिन चले अढ़ाई कोस तो नहीं, पर गाड़ी की रफ्तार काफी कम थी। लाचारी में पीछे आती कई गाड़ियों ने हमारी गाड़ी को बड़-बड़ाते हुए ओवर टेक किया—वह क्या बड़-बड़ा रहा था, मुझे स्मरण नहीं पर रिड़कू ने जोर से कहा था, मुझे याद है—'यूँ तो न्यूईं चलेगी तन्ने घणी तावळ हो ते काढ़ ले आग्गे।" और उसे जल्दी थी, इसलिए उसने अपनी गाड़ी हमारी दाईं ओर से निकाल ली और

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चलता बना। हमारे बैल महंदी लगे पाँवों की तरह, सँभल-सँभल कर, गिन-गिनकर, कदम बढ़ा रहे थे। सूर्योदय हो चुका था, धूप चढ़नी शुरु हो गई थी, रिजाईयाँ तिस्कृत सी होने लगी, मौसम सुहावना हो उठा था। थोड़ी देर बाद एक बम्बा दिखाई पड़ा, उसके पास सड़क के किनारे गाड़ी रोक दी गई, पड़ाव डाल दिया गया। पिताजी ने उस छोटी-सी नहर में स्नान किया। आँधी हो, तूफान हो, ओला वृष्टि हो, कुछ भी हो, उनके प्रतिदिन के प्रातःकालीन स्नान में कभी कोई बाधा नहीं आई। गाड़ी में से कुछ उपले लकड़ियाँ, आटा आदि निकाला गया, आस-पास से 5, 6 ईंटें ढूँढ़ निकाली गईं, पानी छिड़क, ''ओमपवित्रः पवित्रो वा'' का मंत्रोच्चार करते हुए, अरहर के झाँवे से साफ किया गया एक स्थान, जल छिड़क कर पवित्र किया गया और नमक डालकर मोटी-मोटी मिस्सी रोटियाँ सेकी गईं। अचार, गुड़ शक्कर के साथ जठराग्नि शांत होने के बावजूद भी पेट में आवश्यकता से अध्कि मसाला डाल लिया गया, शाम तक का जुगाड़ फिट–कुछ रोटियाँ बच्चों के लिए एक कपड़े में लपेटकर रखली गईं।

फिर ''बोल श्री गंगा जी की जय'' के साथ गाड़ी फिर स्टार्ट हुई। सड़क अधिक चौड़ी नहीं थी, सड़क के बाईं ओर बैलगाड़ियों की एक अटूट कतार लगी हुई थी–दूर से देखने में लगता था जैसे कोई लम्बी मालगाड़ी, एक के पीछे एक जुड़े हुए भिन्न-भिन्न किस्म के डिब्बों को धीरे-धीरे खींचकर ले जा रही है। बैलगाड़ियाँ रेंग रही थी, उनके ऊपर बैठी औरतें गीत गाती जा रही थी, गीतों में कोई आरोह अवरोह तो था नहीं, बस लग रहा था कि गीत गाती जा रही हैं।'

मेरठ से शुरू होने वाली गढ़ रोड़ को एक प्रकार का जंक्शन कहा जा सकता था, उत्तर, पश्चिम, दक्षिण दिशाओं से आती हुई बैलगाड़ियां वहाँ अकर मिल गई थीं और फिर सभी पूर्वी ट्रैक पर गंगाजी की ओर सरकने लगी थी। पश्चिमी उत्तर प्रदेश के अतिरिक्त हरियाणा तक से, श्रद्धालु, गाड़ियों में लदलदकर आए थे। सभी के मुँह पर एक उल्लास छाया था। गीत गाती चली जा रही स्त्रियों से एक गीत सुनाई पड़ा–'तावळी बुलाइयो री माँ जोड़ती सूं हाथ' लगा कि यह हरियाणा की गाड़ी थी। मैं सोचता हूँ–यह गीत तो, ससुराल विदा होती लड़की गाती है, लेकिन उन्होंने इसे यहाँ भी फिट कर लिया–मानों गंगा माँ से प्रार्थना कर रही हैं, कि गंगा मैया, हाथ जोड़कर विनती करती हूँ, मुझे जल्दी बुला

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लियो। गंगा स्नान से लौटते वक्त इसी गीत को सुनता तो ज्यादा बिफिटिंग लगता, लेकिन उन्हें तो गीत गाने से मतलब, अवसरानुकूल है या नहीं, इसकी परवाह वे क्यों करती? इसीलिए, स्त्रियों के गीतों में 'रे भैया रघवीर भात सवेरे लाइयो, नन्हा सा बेट्टा मेरा पालने में झुल्ला झुल्लै आदि तरह-तरह के गीत सुनकर, मैंने सोचा, असली गीत की पंक्तियां तो छोटा सा बलमा मोरा आंगना में गिल्ली खेलै है', औरतों ने इसकी पैरोडी बनाली। मेरे मन में आया, देवी जागरणों मे तो, देवी का हर गीत फिल्मी गीत की पैरोडी है—मुझे लगता है, आज देवी जागरण और गीतों की पैरोडी पंजाब की देन है। बचपन में मैंने यह सब नहीं देखा था—कीर्तन होते थे पर भगवती जागरण और पैरोडी गीत तो आज उत्तरी भारत के हिन्दुओं की संस्कृति का एक अंग बन चुके हैं। एक संस्कृति दूसरी संस्कृति में कैसी घुलमिल जाती है, इसका स्पष्ट रूप पाकिस्तान बनने के बाद देखने को मिला कि पंजाबी संस्कृति, यहां के लोगों की संस्कृति पर किस सीमा तक हावी हो चुकी है। तब स्वतंत्रता आन्दोलन उत्तरोत्तर प्रचण्ड रूप धारण करता चला जा रहा था। किसी-किसी गीत में भारत माता से प्रार्थना की गई थी—भारत मां, इस लाल मुंह वाले बंदर ने भगाइयो। आर्य समाज का प्रभाव भी स्पष्ट दिखाई दे रहा था जिनमें अंधविश्वास पर चोट मारी जाती थी—"स्वामी दयानन्द महाराज कहते, आंख्याँ खोल्लो रे" "उठ जाग मुसाफिर भोर भई अब नींद कहाँ जो सोवत है" के गान के साथ प्रभात फेरी निकलने लगी थी। आज पीछे मुडकर देखता हूँ कि अंधविश्वास की जड़ें उखाड़ने हेतु, कांस की जड़ों में डाला गया चाणक्यों का मट्ठा क्या वांछित फल दे सका है? मुझे लगता है कि उसने तो उल्टे "विषस्य विषमौषधम्" का काम किया। गाजियाबाद मोहननगर और हींडन के बीच स्थित अर्थला पीर पर प्रत्येक बृहस्पतिवार को निरंतर बढ़ती भीड़ एवं दिल्ली से हरिद्वार तक 300 किलोमीटर लम्बे राष्ट्रीय राजमार्ग को, काँवड़ियों की उत्तरोत्तर बढ़ती भीड़ के कारण, संपूर्ण ट्रैफिक को श्रावण मास में एक सप्ताहतक निरस्त करने की सरकार की लाचारी, इसके स्पष्ट उदाहरण हैं।

मेरा ध्यान फिर 'तावळी बुलाइयो री माँ' पर पहुँच जाता है। सोचता हूँ ससुराल विदा होती हुई पढ़ी-लिखी आधुनिक लड़की भी क्यूँ रो उठती है? कदाचित् यह प्राकृतिक है, पेड़ की डाली टूट कर अलग होती है तो

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वृक्ष और डाली दोनों को ही रोना आता होगा। फिर सोचता हूँ आज की फैशनेबल लड़की क्या रोती होगी? जरूर रोती होगी। फिर सोचता हूँ कि ऐसी लड़कियाँ भी मिल जाएँगी जो विदा होते समय, 'बाय मॉम, बाय डैड, टेक केयर, सीयू' (इफ आई कुड) कहती हुई, हाथ हिलाती, दूल्हे के हाथ में हाथ डाले झट कार में जा बैठेगी।

क्या यह संस्कृति हमारी संस्कृति पर हावी हो जाएगी? पता नहीं, लैट्स होप फार द बेस्ट—आशा बलवती राजन।

हमारी गाड़ी मध्यम गति से चली जा रही थी। बैलगाडियों की कतार सामने से आने जाने वाले मोटर वाहनों को स्थान देने के लिए किसी भी कीमत पर सड़क से नीचे उतरने को तैयार नहीं थी। फलतः उन्हें अपने वाहनों के हॉर्न बंद कर देने पड़ते थे और कच्चे में उतरकर आगे बढ़ना पड़ता था। कभी-कभी तो मोटर वाहनों की आमने-सामने की पंक्ति को बैलगाड़ी की रफ्तार से पिछड़ जाना पड़ता था। धीरे-धीरे रेंगकर आगे बढ़ना पड़ता था। इस क़ारण संपूर्ण गगन धूल के बादल में ढँक जाता था। दिन ढलते-ढलते हमारी गाड़ी शाहजहाँपुर किठौर पहुँच गई। लगता था गंगाजी पास खिसकती आ रही हैं और मेरा गाँव दूर पीछे छूटता जा रहा है। थोड़ा आगे बढ़ने पर एक बम्बे के किनारे दूसरा पड़ाव डाला गया, बैलों के आराम, सभी के खान-पीन की प्रातःकालीन प्रक्रिया फिर दोहराई गई। फ्रैश होकर गाड़ी फिर जोड़ दी गई।

सूर्यास्त हो चुका था, अंधेरा घिरने लगा था। आधी रात के आस-पास हमारी गाड़ी गढ़मुक्तेश्वर पार कर गंगाजी की रेती पर पहुँच चुकी थी। रेत की परत इतनी मोटी थी कि उस पर चलना अत्यंत कठिन था। डिस्ट्रिक्ट बोर्ड मेरठ के इंतजाम से, रेतीली भूमि पर तख्तों, खादर की लम्बी-लम्बी झाड़ियों, पेड़ों की टहनियों आदि से एक कच्ची सड़क बनाई गई थी, थोड़े से ही दबाव से पानी ऊपर आ जाता था, फलतः वह सड़क गीली हो गई थी। बैलों की शक्ति और पिताजी, वैद्य जी के धैर्य को फिर चुनौती मिलनी शुरू हो गई। रिड़कू दोनों बैलों की पूँछ ऐंठ-ऐंठ कर, 'अरै मर ग्या के' के साथ उन पर सांटे बरसा रहा था, पिताजी, वैद्यजी गाड़ी को धक्का लगाते-लगाते हाँफ रहे थे, पिताजी बेटे पर कुढ़ रहे थे और बेटा, 'अबके खाई सो खाई, आगे राम दुहाई' करते हुए अपने क्षोभ को दबाते चल रहा था। और आखिर, अविरल भाव से बहती हुई

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गंगा जी के दूर से ही दर्शन हुए। गंगा जी के जय-जयकार की उच्च ध्वनि कानों में पड़नी शुरू हुई—बोल गंगाजी की जय!

हलूमान की हू

हो प्यारे ए ए ए।"

मुझे आज भी ज्यूँ की त्यूँ याद है। विशेषतः हरियाणा के और हमारी यहाँ के ग्रामीणों के मुँह से विस्फोटित इस हुंकार की पहली पंक्ति "बोल गंगा की जय" का अर्थ तो समझ में आया था पर "हलूमान की हु", "हो प्यारे" का भाव भले ही पल्ले पड़ गया था, पर आज सोचता हूँ कि वह वैसा ही तो नहीं घड़ लिया गया था जैसे

"जाट रे जाट, तेरे सिर पे खाट"

"तेल्ली तेल्ली, तेरे सिर पे कोल्हू।" जाट ने तुरंत उत्तर दिया

"पर चौधरी, तुक तो मिली ही नहीं।"

"मत मिलण दे चोद्दी नै, साळा बोझ तो मरेगा।"

हमारी गाड़ी गंगाजी के पावन तट के निकट पहुँची तो एक सिपाही ने उसे एक ओर मोड़ दिया। पूरा मेला 8, 9, संतरों में बँटा हुआ था। संतर, कदाचित् सेंटर अथवा सैक्टर का अपभ्रंश है। जैसे-जैसे संतर भरते जाते थे, गाड़ियों को खाली संतर की ओर मोड़ दिया जाता था। पहले पहुँचने वाले को इच्छानुसार स्थान मिल जाता था। हमारी गाड़ी गंगा तट के काफी निकट रोकी गई। गाड़ी से सामान उतार लिया गया और घर से लाए गए चार-पाँच बाँसों की सहायता से, टैंट का एक ढांचा सा तैयार कर उस पर पाल डालकर, टैंट का आकार दे दिया गया।। टैंट के पीछे वाली खाली जगह पर एक खेस डाल दिया गया। सामने वाला मुंह खुला रहा। टैंट में सारा सामान भर दिया गया, बीच में गद्दे बिछाकर उठने-बैठने, सोने की जगह छोड़ दी गई थी। जय गंगे, हर हर गंगे का उद्घोष कानों में रस घोल रहा था, एक अजीब सा आभामण्डल निर्मित हो उठा था।

यूँ तो, चारों ओर हलचल थी, हम टैंट में बैठे-बैठे ऊँघ रहे थे, गंगा तट के किनारे-किनारे तीन चार साधुओं की एक टुकड़ी तंबूरा बजाती "उठ जाग मुसाफिर भोर भई अब रैन कहाँ जो सोवत है," गाती निकली। हमारी नींद खुल गई थी, हम चेतन से हो उठे। सबसे पहले गंगा-स्नान की योजना बनी। अभी थोड़ा अंधकार था। पिताजी बोले, "तुम ठहर कर

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्नान करने जाना, मैं स्नान कर आता हूँ--नवमी दशमी एक हो गई थी आज एकादशी है, सब लोग थोड़ी ठंड कम होने पर स्नान करने जाना।'' कहकर पिताजी स्नान करने चले गए।

सूर्य की लालिमा आकाश पर फैलनी शुरू हो गई, देखते ही देखते, बड़े से लाल गुब्बारे सा सूर्य धीरे-धीरे पूर्व के क्षितिज में ऊपर उठता दिखाई पडा। लालिमा क्षीण होने लगी और सूर्य-किरणें वृक्षों के झुरमुट से तेज बाणों की तरह आकाश से पृथ्वी पर फैलने लगी। लगा जैसे सूर्य गंगा माँ को अर्घ्य चढ़ा रहा है। अपना पीताम्बर उतार पूरे शौर्य की चमक-दमक के साथ अपनी दीप्ति- फुहारें बरसाता तेजी से बढ़ा चला आ रहा है।

सर्दी कम हुई, तो सब लोग नहाने के लिए तैयार हो गए। पिताजी कंबल ओढ़कर टैंट में बैठे भगवत्भजन करने लगे और हम लोगों ने गंगा तट की ओर प्रस्थान किया। चूँकि गंगा-तट निकट ही था, इसलिए बड़े भैया ने सबके कपडे उतारे और मात्र धोती पहने-पहने मेरी अँगुली पकड़ तट की ओर बढ़े, मैं एकदम नंगा था, वहाँ थोड़ी-थोड़ी सर्दी लग रही थी। मैंने जैसे ही जल में पैर रखा, मेरा पैर सी सी के साथ स्वतः बाहर सूखे में आ पहुँचा, मेरा हाथ पकड़, भैया ने मुझे थोड़ा भीतर की ओर खींचा, मैं काँपते-काँपते, धीरे-धीरे आगे बढ़ा, हि हि हि हि करता मैं घुटनों तक गहरे जल में पहुँच गया, भैया आगे खींचते रहे, मेरी कमर तक परनी आ गया था, उन्होंने कंधों से मुझे पकड़ा और 'जय गंगे' कहते हुए मुझे जल में एक डुबकी दे दी, मैं हि हि कर उठा, काँपते हुए अपने दोनों हाथों से उनकी जंघाओं की कोली भरली। उन्होंने मुझे गोदी उठा लिया, धीरे-धीरे और गहरे जल में घुसे और मुझे गोदी लिए लिए 'हर हर गंगे' बोलते हुए स्वयं एक डुबकी लगा दी। मैं उनकी भुजाओं में ही ऊपर को उछला, मेरा मुँह खुला एक तीव्र श्वास भीतर की ओर गई, थोड़ा जल मेरे कंठ के नीचे उतर गया और मैंने एक हिचकी सी ली, फिर उन्होंने दूसरी और तीसरी बार उसी तरह डुबकी लगाई, मैं रोने को तैयार था। धीरे-धीरे भय के साथ-साथ शीत भी लगभग समाप्त हो गया, उन्होंने मुझे जल में खड़ा कर दिया और मेरा हाथ थामे रहे। फिर मैं थोड़ा किनारे की ओर चला। घुटने तक पानी में पहुँचकर मैंने दोनों हाथों से पानी में छप-छप करते तैरने की सी मुद्रा बनाई—मैं निहार रहा था कि सभी स्नानार्थी बच्चे बूढ़े जवान जय

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गंगे, हर गंगे, हर हर गंगे के उद्घोष के साथ अधिकांश लोग अँगूठों से कान और उँगलियों से आँखें नाक बंद कर एक झटके से डुबकी लगा रहे थे, खिलखिलाकर हँस रहे थे, एक-दूसरे पर चुल्लुओं से जल उछाल रहे थे, अपने मन, शरीर से शीत, कंपन सिहरन, भय को भगा चुके थे और जी भर स्नान कर रहे थे। एक ओर को स्त्रियाँ, लड़कियाँ नहा रही थी। मैंने देखा कि स्त्रियाँ ज्यादातर एक धोती लपेटे नहा रही थी। बिना पेटीकोट और ब्लाउज के। अपनी चोटी को सिर के ऊपर लपेट गर्दन तक पानी में घुसी हुई ऊपर-नीचे उठ बैठ रही थी, भीगने के कारण उनकी धोती पारदर्शी हो गई थी जिसमें से उनके अंग प्रत्यंग साफ दिखाई पड़ रहे थे। तट पर खड़े और स्नान करते कुछ लोग जय गंगे, हर हर गंगे को भूल, उनकी ओर दृष्टि गड़ाए निर्लज्ज भाव से ऐसे देख रहे थे कि जब इन्हें ही लाज नहीं आती तो हम क्यूँ शर्म से मुँह फेरें। आज सोचता हूँ इनमें से कुछ लोग ऐसे अवश्य होंगे जो स्वयं को देवी का उपासक मानते हुए नेत्र बंद कर भैरवी तंत्र का अनुष्ठान सा कर रहे होंगे।

टैंट में पहुँचकर भोजनादि से निवृत्त हुए, कुछ थोड़ा इधर घूमे और सूर्यास्त हो गया। स्नान का पहला दिन एकादशी का था। वह देवोत्थान एकादशी थी। उस रात औरतें ढोलक या उल्टे घड़े पर ताल लगाती, गीत गा गाकर सोऐ हुए देवों को जगाती थी। 'उठो रे देव! जागो रे देव!' गीत के माध्यम से देवताओं का आह्वान करती थी। बरसात के पूरे चार महीने सोते रहे महाराज, जब तो जग जाओ, उठ बैठो, देखो बरसात के बाद नया सवेरा आया है, निद्रा त्यागो और हमारी सुधि लो। इंसान भी क्या करे, उसे अपने कल्याण की तो सोचनी ही है, सरकार और समाज-कल्याण एजेंसियों से तो उनका कल्याण कभी हुआ नहीं, हारी थकी जनता के पास और संबल भी क्या बचा था, फिर उन्हें अपने बेटों के लिए बहुएँ लानी हैं, लड़कियों के हाथ पीले करने हैं, देव उठें तभी तो उनके बच्चों की विवाह शादी हों, साक्षी रूप में देवगण तो होने ही चाहिए। देर रात तक टैंटों से मनुहारे आती रही।

गीत, ग्रामीण महिलाओं के जीवन का एक अभिन्न अंग है—जन्म से मृत्यु पर्यंत गीत ही गीत रच-बस गए हैं इनके जीवन में—हर अवसर पर ये अपनी ही भावाभिव्यक्ति गीतों के माध्यम से करती हैं। गर्भधारण के पश्चात् से गोद भराई की रस्म से गीतों की शुरूआत हो जाती है, शिशु

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के जन्म से ही सोहर गीत, कुआँ पूजन गीत, लल्ला लल्ला लोरी दूध की कटोरी, आदि लोरी गीत, विद्यारंभ संस्कार गीत, फिर विवाह गीतों की तो भरमार रहती है जो अलग-अलग नेग टेहलों में बंटे होते हैं--बन्ने गीत, बन्नी गीत, भात गीत, यज्ञोपवीत संस्कार गीत, और विदा गीतों में पुरुष निर्मित सामाजिक यंत्रणा से भयाक्रांत भावों से बिलखती, ससुराल की और धकिया दी गई लाचारी के आँसू बहाती, अपनी संपूर्ण वेदना को विदा गीतों के माध्यम से प्रकट करती हुई अपील सी करती है, रे बाबुल मैं तो तेरे झांबे की चिड़िया, खूंटे की गैया हूँ क्यूँ उड़ा विदा मुझे, फुर्र से, क्यूँ थमा दिया मेरा जेबड़ा किसी के भी हाथों में—एक बार भी मुझसे पूछने की आवश्यकता न समझी। वह इस आशा से गुहार लगाती है कि माँ तू तो औरत है, कदाचित् मेरी पीड़ा को समझ सकती है। तावळी तावळी बुलाती रहियो ताकि मैं कुछ क्षणों के लिए तो खुली हवा में साँस ले सकूँ।

महिला-जीवन में गीतों का यह सिलसिला यहीं खत्म नहीं होता, चलता रहता है और यहाँ तक कि पुत्र, पुत्री, पति आदि की मृत्यु पर भी उनके मृत शरीर से सिर पटक पटककर अपनी अंतर्वेदना गीत के माध्यम से व्यक्त करती हैं अरे मेरे लाल, इब किसने लाल्ला पुकारूँगी। हे मेरे भरतार इब किसके सहारे जिऊँगी? मनै भी अपने साथ ले चल रे ए ए ए, हाय आदि। सारांश यह है कि गीत इन ग्रामीण महिलाओं की रग-रग में बसे हैं, ये सब सामूहिक होते हैं। आज तो लेड़ीज संगीत होता है, फिल्मी गीत, एकल या सामूहिक रूप से सस्वर गाए जाते हैं। आधुनिका के लिए ये गीत 'रब्बिश' गँवार और न जाने क्या-क्या हैं।

ग्रामीण लोक मानस में खिले इन सदाबहार गीतों की सुषमा की आक्सीजन पता नहीं कौन हर ले गया, ये मुरझाने लगे हैं, कदाचित् फिल्मी बयार अथवा मॉड, आधुनिकता अथवा दोनों ने इसके पर्यावरण को दूषित कर दिया है। यूँ फिल्में भी कब बच सकी हैं इन गीतों के आकर्षण से? ''समधन तेरी घोड़ी चने के खेत में'', ''भैया मेरे, राखी के बंधन को निभाना'', ''बाबुल, का घर छोड़ के गोरी हो गई आज पराई हे,'' पैसे दो, फिर जूते लो' आदि अनेकानेक इसके प्रकार है। मुझे स्पष्ट दिखाई पड़ रहा है कि आज फार्म हाउस अवधारणा, मक्की की रोटी चने का साग आदि का आकर्षण इस बात को पुष्ट करता है कि शहर गाँव की ओर

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भागने लगा है और गाँव तो शहर की ओर बदहवास हुआ भाग ही रहा है।

टैंटों में किसी प्रकार की प्रकाश-व्यवस्था नहीं थी, एकादशी के चंद्रमा की रोशनी ही पर्याप्त थी उनके लिए। किस प्रकार बखान करूँ उस चाँदनी की स्निग्धता का, उसके तले बसी उस टैंट नगरी का, उसके भीतर रची बसी दृढ़ आस्था के स्वरों से प्रफुल्लित गीत लहरी का और एक गीत लहरी से प्राप्त आत्म विश्वास का जिसे आज तक कोई ज्ञान विज्ञान, कोई समाजसुधार दर्शन एक हल्की सी जुंबिश तक न दे सका। कितनी गहरी और दूर तक फैली जड़ें हैं इस आस्था के बट-वृक्ष की कि सहस्रों वर्षों से मुगलों और अपने तथाकथित अंधविश्वास-उखाड़ आंदोलनों ने इसे जड़ से उखाड़ फेंकने के विस्फोटक उपक्रम किए, एड़ी से चोटी तक के जोर लगाए, पर इस पर लटकती अनगिनत दाढ़ियों में से एक को भी न नोच सके, ज्यूँ-ज्यूँ इसे उखाड़ फेंकने के प्रयास किए गए त्यूँ-त्यूँ ये दृढ़ से दृढ़तर होती हुई लोक मानस के अंतस्तल तक फैलती चली गई, फैलती चली जा रही हैं।

पश्चिमोत्तर भारत की रग-रग में गंगा जी इतने भीतर तक समाई हुई है कि सब इसे गंगा जी कहते हैं, यहां तक कि अंग्रेजों ने भी इसे द गैंजेज़, (गंगाजी) नाम से पुकारा— जिससे पूछा, उसी ने कहा, ''गंगाजी, तो वे भी 'द गैंजेज़' कह उठे। जो सम्मान गंगा जी को मिला, भारत की किसी और नदी को नहीं मिला। द नर्मदाज़, द शिप्राज़, द ब्रह्मपुत्राज़, कहकर संबोधित नहीं किया गया। अनेक हिन्दू संस्थानों में गंगाजी पूजी जाती है। यहाँ तक कि ग्रामीण जन बात-बात में 'गंगाजिक सूं', गंगा जी की सूं, कहकर सौगंध खाता है। पुत्री का विवाह करने के पश्चात् माता-पिता का गंगा-स्नान करना, संस्कृति का अंग सा बन गया है। पुत्री का विवाह करने के उपरांत माँ-बाप को कहा जाता है—चलो आप तो गंगा नहा लिए। यहीं तक नहीं, किसी कठिन कार्य को कर लेने के बाद अक्सर व्यक्ति कह देता है कि हम तो जैसे गंगाजी नहा लिए।

एक फिल्म आई थी—'गंगा तेरा पानी अमृत'। इसे सुनकर मुझे लगा जैसे गंगा जी का अपमान कर दिया हो, इसका नाम 'गंगा तेरा जल अमृत' होना चाहिए था। 'गंगा जल' सुनते ही जो शुचिता-बिम्ब बनता है, क्या 'गंगा-पानी' सुनने में बनता है? तब मैंने निष्कर्ष निकाला कि इस

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिल्म का निर्माता लेखक इस इलाके का नहीं है और यदि है तो हिन्दू कदापि नहीं हो सकता। खैर, इसे आप व्यक्तिविशेष की आस्था का प्रश्न कह सकते हैं—समझ अपनी अपनी, खयाल अपना-अपना।

अगले दिन प्रातः उठकर मैंने देखा कि हमारे आस-पास की खाली भूमि रात भर में टैंटों से भर गई है। ब्राह्ममुहूर्त से ही हलचल बढ़नी शुरू हो जाती है। सभी लोग, हाथ में जल भरा पात्र लेकर, शौच-निवृत्ति हेतु टैंटों से निकल पड़े। बच्चों को टैंट के आसपास ही, रेत में छोटा सा गड्ढ़ा बनाकर उसे बिठा दिया गया और शौच निवृत्ति के पश्चात् रेत डालकर उस गड्ढे को भर दिया गया। बड़े-बड़े लोग, टैंटों के पीछे, तट से थोड़ा पीछे हटकर, खुले गंगा खादर में बैठ गए। अंधेरे में दूर से देखने में लगता था जैसे उपलों आदि की ऊँची सी गठरियाँ रखी हों। लोटा उठाए आने जाने वालों की लाइन सी लगी हुई थी। फिर गंगातट पर जाकर गीली रेती से पात्र माँजते, हाथ-मुँह धोते और कुल्ला करते थे। कभी-कभी शौच-स्थान से आती हवा का झोंका, श्रद्धालुओं को अपने प्रकृत-कर्म का ध्यान दिलाता था तो लगता था जैसे अच्छी चीज का सेवन करते-करते मक्खी मुँह में घुस गई हो।

बड़े भैया की अँगुली पकड़े-पकड़े मैंने मेला देखा जिसकी एक फिल्म सी नेत्रों के समक्ष चल रही है—बड़ा आनंद आया, पैरों तले झिलमिल करती गुदगुदी रेती, उस पर बिखरी हुई चंद्रमा की चाँदनी, बाईं ओर आगे को सरकती चांदी की चौड़ी परत सी गंगाधारा और दाईं ओर सजी-धजी, शामियाने तनी तरह-तरह की दूकानें, मनमोहक लग रही थीं। गंगा लहरों पर पड़ा चन्द्रमा ऐसा लग रहा था मानों गंगा माँ चन्द्र शिशु को झूले में लिटा झोंटा दे रही है।

थोड़ा-सा चलने पर एक दूकान देखी—शामियाने के नीचे, लकड़ी के ऊँचे-ऊँचे तख्तों पर सफेद चादरें बिछाकर उसके ऊपर बड़ी-बड़ी परातें, थाल रखे हुए थे जिनमें गुड़ की भेली के आकार की सफेद-सफेद मिठाइयाँ रखी हुई थी। मैंने भैया से पूछा, 'यू के है?'

'खजला!' उन्होंने बताया था।

''खजला के होवे?'

'कुछ नहीं, खांड पकाकर बना लिया जाता है। मेलों के अतिरिक्त मैंने खजला कहीं बाजार में नहीं देखा। आगे बढ़ने पर मैंने देखा कि एक

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यक्ति पतली सी बाँसुरी बजाता आया। उसके कंधे पर एक लम्बी सी लाठी में ऊपर से नीचे तक रंग-बिरंगी फिरकियाँ, गुब्बारे, लाल पन्नी के बच्चों के चश्में, लटक रहे थे और उसके हाथ की एक डलिया सी में, बाँसुरियाँ, पीपी आदि रखी हुई थीं। बच्चे उस ओर लपक रहे थे और वह उन्हें बेच रहा था। मैंने भी एक बाँसुरी खरीदी और सारे मेले उसे बजाता चल रहा था। चारों ओर से बाँसुरी, पीपी की आवाजें आ रही थी। थोड़ा आगे बढ़ने पर, एक ऊँचे से तख्त पर चढ़ा हुआ, ऊपर को चोंच निकली एक गोल सी टोपी पहने, आँखों के चारों ओर काला घेरा और होठों पर लाली लगाए, मुँह को रंगे हुए, उछल कूद करते सर्कस के एक जोकर को देखा। उसके हाथ में एक बड़ा सा झुनझुना जैसा कुछ था जिसे वह दूसरी हथेली पर पटक-पटक कर मार रहा था, भीड़ के मनोरंजन के साथ वह अपना प्रचार भी कर रहा था। थोड़ा और आगे बढ़े तो जोर की आवाज में सुनाई पड़ा—"देखो, देखो, देखो—दिल्ली का लाल किला, कुतुब मीनार देखो, बारह मन की धोबन देखो, देखो देखो, देखो। उसके सामने कनस्तर का एक काला डिब्बा सा रखा हुआ था। जिसके ऊपर काला कपड़ा पड़ा हुआ था। और सामने की ओर बीच में एक गोल शीशा लगा हुआ था। उस कपड़े को सिर के ऊपर डाल, उस शीशे में आँखें लगाकर बच्चे, दिल्ली का लाल किया, कुतुब मीनार, बारह मन की धोबन और न जाने क्या क्या देख रहे थे।

इसके आगे, चार खटोले वाला ऊँचा सा झूला आया, मैं उस पर झूला, जैसे ही मेरा खटोला ऊपर पहुँचता मेरे दिल में एक गुदगुदी सी होती थी। ऊपर से मैंने चारों ओर दृष्टि घुमाई, मुझे दूर-दूर तक टैंट नगरी बसी दिखाई थी। उसे स्मरण करता हूं तो मुझे सिडनी के एयरपोर्ट पर उतरते हुए विमान से नीचे बसी सिडनी दिखाई पड़ी थी। सिडनी के सभी मकानों की छत खपरैल की बनी है। ऊपर से देखने पर मुझे लगा था जैसे छोटे-छोटे टैंटों की कोई बड़ी सी नगरी हो। मेला देखने वालों की भीड़ आ जा रही थी। कोई बच्चे की अँगुली पकड़े जा रहा था, किसी ने बच्चे को कंधे पर बिठा रखा था। कोई अपने नन्हे-मुन्ने को गोदी ले रहा था। किसी स्त्री ने अपने सर पर पोटली इस प्रकार रखी हुई थी कि उसे बिना पकड़े ही वह बेफिक्र घूम रही थी।

रह रहकर मेरे कानों में लाउड़स्पीकर की घोषणा पड़ रही थी—अपने

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बच्चों का ध्यान रखें, अपने सामान की देखभाल करें—थोड़ी देर में सुनाई पड़ा—'एक बच्चा जो अपना नाम महेन्द्र बताता है, आधी आस्तीन की धारीदार लाल कमीज और नीले रंग की नैकर पहने है, अपने माँ, बाप से बिछड़ गया है, अपने पिताजी का नाम खजान और माँ का नाम जगरोशनी बताता है, जिस किसी का भी हो, वह 9 संतर की पुलिस चौकी से आकर ले जाए।'' इसी प्रकार माता-पिता की ओर से अपने खोए हुए बच्चे की विवरणानुसार उद्घोषणा हो रही थी, कि किसी को मिले तो फलां स्थान पर पहुँचाने की कृपा करे। मेले में बच्चे गुम होने की सूचना के बारंबार प्रसारण से लग रहा था कि बच्चे गुम हो रहे थे। साथ ही कभी-कभी ऐसा भी सुनने को मिलता था—मेरठ बेगम बाग के लाला राम सरण को सूचना दी जा रही है कि वे सूचना केन्द्र में आ जाएं, उनके साथी अमरनाथ, उनकी इंतजार कर रहे हैं।

मेला घूमने का असली आनंद चंद्रमा की चाँदनी में आता था—आकाश में छाई सारी धूल वर्षा ऋतु ने धो डाली थी, इसीलिए कार्तिक पूर्णिमा की चाँदनी बड़ी धुली-धुली सी लग रही थी, लगता था चाँदनी नहा-धोकर आई थी। मेले में बिजली की रोशनी तो यत्र तत्र ही दिखाई पड़ती थी, दुकानों पर भी, गैस के हंडों की रोशनी उतनी अधिक नहीं थी। अभी मेरे नेत्रों के समक्ष नौचंदी आ खड़ी हुई। मुझे लगा जैसे मुझसे पूछ रही हो, बता मैं सुंदर हूँ या तेरा गढ़गंगा का मेला सोहणा है! मुझे लगा जैसे नौचंदी का मेला आँखें चौंधियाने वाली जगमगाहट हो, फैशनेबुल भारी मेकअप चढ़ाए हुए गर्बीली सी, दूसरी ओर निश्छल, हृष्ट-पुष्ट, संतोषदायिनी गंगा के मेले की छवि—नौचंदी की भाँति न कहीं दिखावट, न औपचारिकता, ना बात बात में सॉरी, कैट वॉक करती, उधार की हँसी का प्रदर्शन करती, कूल्हे मटकाती रूपगर्विता मॉडल, बस एक भोली-सी ग्राम-मृगनयनी, अल्हड़ निष्कपट खिलखिलाहट लिए, अपनी खूबसूरती से बेखबर, धर्म भीरु।

इन तीन-चार दिनों में मैंने मेले के आनंद का आकंठ पान किया—दिन भर गंगा स्नान का दर्शन, खाना पीना, आराम करना और रात्रि में चाँदनी तले गुदगुदी रेती पर नंगे पैर मेला दर्शन होता।

चतुर्दशी की रात्रि में हम लोगों ने सामान समेटकर गाड़ी में लादना शुरू कर दिया था, प्रातः पूर्णिमा लगते ही, श्रद्धालु जनता पूर्णिमा के स्नान की औपचारिकता फटाफट पूरी करते थे और जल्दी से जल्दी अपनी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बैलगाड़ी रवाना कर देते थे। जो जितनी जल्दी लाइन में लगकर उस कच्ची सड़क पर चढ़ने की बाजी मार लेता था, वह उतना ही सुखी रहता था। बैल कहीं दगा न दे जाएं, इस भय से आक्रांत पिताजी, वैद्य जी आदि ने कुछ जल्दी ही पैकअप कर लिया था। गाड़ी में भार, पहले की अपेक्षा कुछ कम हो गया था। कुछ आश्वस्ति थी, बैल शायद अब उतनी दगा न दें। पिताजी, भैया आदि पैदल और स्त्रियाँ बच्चे गाड़ी पर लद लिए। रिड़कू ने बैलों का पगहा खींचा और जीभ से च् च् च् च् करते हुए उन्हें चलने का आदेश दिया। बैलों पर अपनी जबान का कोई असर न होता देख, इसने दोनों बैलों की पीठ पर एक-एक साँटा हल्के से मारा और बैल गंगा मैया का मोह-त्याग आगे बढ़ने को लाचार हुए। थोड़ी-थोड़ी देर बाद रिड़कू बैलों पर चिल्लाता, "अरे चल, मर ग्या के?" और दोनों की पूँछ ऐंठता, हल्का सा एक-एक सांटा उनकी कमर पर मारता रहता था। गाड़ी रेती में धंसी जा रही थी। बैल आगे को नीचे झुकते हुए घुटने मोड़-मोड़कर यथाशक्ति जोर तो लगा रहे थे पर अपनी उस बीती जवानी को कहाँ से वापस लौटा लाते जो एक बार जाकर फिर वापस नहीं आती। सड़क के बाएँ, दाएँ, पीछे गाड़ियों की भीड़ बढ़नी शुरू हो गई थी, 'सरवाइवल ऑव द फिटेस्ट' का दृश्य मूर्तिमान हो उठा था—शक्तिशाली बैल, दौड़कर उस कच्ची सड़क पर आ गए और हमारी गाड़ी, उस बूढ़े व्यक्ति की तरह खड़ी रही जो सड़क क्रॉस करने के लिए मोटर कारों की भीड़ से निकल जाने का साहस न जुटा पाने पर किंकर्त्तव्य विमूढ़ सा खड़ा रहता है। फिर अचानक ही कोई देवदूत युवक हाथ पकड़कर उसे सड़क पार करा देता है। पिताजी, दूसरे भैया, घुटनों के बल झुककर आगे को धक्का लगा रहे थे, रिड़कू पूरी ताकत से बैलों की पीठ पर सांटे पर सांटे बरसाए जा रहा था, पिताजी के मुख पर क्रोध और वैद्यजी के मुख पर पश्चाताप निर्मित, क्रोध स्पष्ट झलक रहा था, वे पसीना-पसीना हो गए, बैल अड़ियल हो उठे, मार खाते रहे, पर सड़क पर नहीं चढ़े। आसपास की गाड़ियों से कुछ युवक उतरे, उन्होंने, "बोल गंगा की जय, हलूमान की हू, हो प्यारे' की हुंकार लगाई, घुटनें मोड़ पूरी ताकत गाड़ी आगे को धकेली और बैल गाड़ी खींच सड़क पर चढ़ गई। गाड़ी धीरे-धीरे सरकने लगी, सभी ने चैन की साँस ली, पिताजी, वैद्य जी ने बैलों की पीठ सहलाई जैसे अपने हाथ से पीटें गए बच्चे को रोता देख, द्रवित हो, उसे टॉफी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देकर उसके आँसू पोंछ रहे हों।

गिरते-पड़ते, कुढ़ते-कुढ़ाते, बात-बात पर छोटों पर अपना गुस्सा उतारते, जैसे तैसे हम अपने गाँव 12, 13 घंटे विलम्ब से पहुँचे—'देर आयद दुरुस्त आयद।' गाड़ी से उतरते ही सभी ने मन्दिर में सिर झुकाया, हाथ जोड़े और शंकर भगवान का शुक्रिया अदा किया—तू बड़ा कृपालु है प्रभु हमें सकुशल अपने चरणों में बुला लिया।

मैं समझता हूँ, कार्तिक-गंगास्नान के मेले की तिथियाँ बड़ी सोच समझ कर रखी गई हैं। वर्षा ऋतु समाप्त, शरद ऋतु का आगमन, हल्की-हल्की गुलाबी सर्दी, किसान अपनी रबी फसल की बुवाई जुताई से सारे वर्ष की थकान और निराशा धो डालने के लिए, पूरी उमंग के साथ, खेती बाड़ी आदि के सभी कार्यों से निश्चिंत होकर, एकाग्र भाव से, गंगा मैया से एक नवस्फूर्ति बटोरने हेतु, सपरिवार गाते-बजाते, झूमते-झामते चला जाता है। कदाचित् यह उनके जीवन का सर्वोत्तम समय होता है, जिसका उपयोग उसके लिए चिरस्मरणीय बन जाता है। यह सप्ताह उसके लिए मंगलोत्सव सप्ताह होता है जिसकी पुनर्प्राप्ति हेतु, ललचाता रहता है क्योंकि इसका आयोजन वह प्रतिवर्ष नहीं कर सकता, बस, उसके स्मरण मात्र से ही प्रसन्न होता रहता है। तस्वीरे यार दिल में है, गर्दन झुकाई देख ली।

आज सोच रहा हूँ कि काश कि यह दिन बार-बार आए। मेरे बालपन का गढ़ गंगा का मेला और गंगा-स्नान जिसके लिए कष्टकर रहा होगा, रहा होगा, मुझे तो इस यात्रा में कोई कष्ट नहीं हुआ। मौज में बैलगाड़ी में बैठा-बैठा, औरतों के गीत सुनता रहा, उनके सुर में सुर मिलाता रहा, तरह-तरह के नजारे देखता रहा था। आज मेरा शरीर तो मुझे निराशा करता है घर मेरी स्मृति मुझे आज तक गंगा-स्नान कराती चली आ रही है, उस चिरानंद को, ऐसे मन-प्रीत को कैसे भूलें और क्यूँ भूलूँ?

□□□

डॉ० राम [illegible] आर्य, बिजनौर
की स्मृति में [illegible] भेंट—
हरप्यारी [illegible] प्रकाश आर्य
संतोष कुमारी, [illegible] प्रकाश आर्य

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
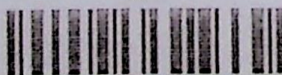
डॉ. विद्याभूषण भारद्वाज

जन्म– 19 जनवरी, 1928, ग्राम डालमपुर (मेरठ) उ. प्र.

शिक्षा– पी-एच. डी. मेरठ कॉलेज, मेरठ।

1947 में प्रायबेटली प्रभाकर, 1949 में साहित्य रत्न।

अध्यापनानुभव– 1974 से स्थायी रूप से महामना मालवीय महाविद्यालय खेकड़ा (मेरठ) में हिन्दी प्रवक्ता के पद पर कार्य करते हुए 1992 में असोसिएट प्रफेसर पद से सेवा निवृत्त।

पुरस्कार– छुट-पुट पुरस्कारों के अतिरिक्त, कोई उल्लेखनीय पुरस्कार नहीं झटक सका।

सर्वप्रिय पुरस्कार–जीवन में प्राप्त पुरस्कारों में, मेरा सर्वप्रिय पुरस्कार चवन्नी का वह पुरस्कार है जो दौरे पर आए एस. डी. आई. ने मुझ सात वर्ष के बालक को अपनी गोदी में उठाकर दिया था, वह मेरे मानस पटल पर आज तक एज़ इट इज़ उत्कीर्णित है।

प्रकाशित रचनाएँ–कहानी संग्रह– उतरन

उपन्यास– सनकी शास्त्री (सद्यः प्रकाशित)

हास्य-व्यंग्य– ततैंया

स्मृति शिलालेख–क्यूँ भूलूँ– मेरे बचपन के संस्मरण

शोध ग्रंथ– आचार्य चतुरसेन शास्त्री के उपन्यासों में इतिहास का चित्रण।

अनुवाद– अंग्रेजी से हिन्दी– मार्शल गोविंदन सच्चिदानन्द द्वारा लिखित

1. Kriya Yoga Sutras of Patanjali and the Siddhas का "पतंजलि के योग सूत्र व अन्य महर्षि",
2. Babaji and the 18 Siddh KriyaYoga Tradition का "बाबाजी व 18 महर्षियों की क्रिया योग परंपरा",
3. How I become the disciple of Babaji

₹ 250/- $25

ISBN 81-8129-441-6
9788181294418

4231/1, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली - 110002
दूरभाष : 23247003, 23254306
Fax No. 011-23254306

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar